दिमाग़ी ऐयाशी

[प्रहसन]

लेखक
रामनरेश त्रिपाठी

प्रकाशक
हिन्दी-मन्दिर
प्रयाग

पहला संस्करण] जून, १९४० [मूल्य ॥)

भूमिका

मुझे गुम-सुम रहनेवाला आदमी बड़ा मनहूस लगता है। हास-परिहास भी जीवन का एक अंग है। आदमी को कुछ तो हँसते-बोलते रहना चाहिये।

कवि लोग औरों का मज़ाक उड़ाया करते हैं, इस पुस्तक में मैंने उनका उडाया है। जो सहृदय होंगे, वे रस लेंगे, जो साहित्य के घूर होंगे, वे घुरमुसायँगे। उनकी मैंने बिलकुल परवा नहीं की।

पुराने और नये दोनों ढर्रों के बहुत-से कवियों को अभी पता नहीं लगा है कि वे पुरानी दुनिया को बहुत पीछे छोड आये हैं। जैसे, हमारे बडे-बडे कवि ज़्यादातर शहरों के रहने वाले हैं। रोज़ वे बम्बे के नीचे नहाते और बम्बे का पानी पीते हैं। फिर भी 'पनघट' के गीत गाते है। सड़क के बम्बों पर भी कभी-कभी भीड़ लग जाती है ज़रूर, पर वहाँ 'पनघट' का-सा रस नही आ सकता। क्योंकि बम्बे का मुँह एक, और उसके लिये झगड़नेवाली बीसों। दूसरे, उन घरों मे, जिनमे कवियों की नायिकायें निवास करती हैं, स्वतंत्र बम्बे लगे हुए हैं। वे नायिकाये पानी के लिये बाहर आती ही नहीं। सड़क के बम्बे पर चुचकी-पुचकी बुढ़ियाँ या गरीबी के बोझे से कराहती हुई, चिथडे लपेटे हुई, भ्रू-विलासानभिज्ञा किशोरियाँ जमा होती है, जो कवि की नायिका हरगिज़ नहीं कही जा सकती। फिर हमारे कवि किस 'पनघट' का गीत गा रहे हैं, पता नही। अभी तक वे ब्रज की खोर मे खड़े है। उनकी सनक को कौन उतारे?

मै समझता हूँ, हरएक कवि को वर्तमान और भविष्य-काल

मे रहना चाहिये। जो ऐसी सावधानी न रक्खेंगे, भूत उनको खा जायगा। इशारे के तौर पर मैंने 'मुंशी मनबोधलाल' नाम की एक बेतुकी कविता इसमें दे दी है। उसमें कटाक्ष की चोट बड़े ज़ोर की लगी है, साथ ही बूट-सूट, मानस, इक्का, डोली, अस्पताल और गाँधीजी भी है। कवि लोग इसी तरह, इससे अधिक सरस भाषा और मनोहर भाव-व्यञ्जना के साथ वर्तमान काल की अपनी और अपने साथियों की अनुभूतियों का वर्णन क्यों न करें ?

यह पूछा जा सकता है कि इन प्रहसनों के लिखने का मेरा उद्देश्य केवल हँसना-हँसाना ही है, या और कुछ ? इसका उत्तर प्रहसनों को पढ़ जाने के बाद पाठक का हृदय स्वयं दे लेगा। और मेरा विश्वास है कि वह एक स्थायी प्रभाव उत्पन्न करेगा और कविता में अवांछनीय कामुकता और आधार-च्युत अतिशयोक्तियों की धारा को मंद कर देने मे किसी हद तक समर्थ भी होगा।

हिन्दी मे हज़ारों कवि हो गये है, पर उनमे से तुलसी, सूर और कबीर आदि गिनती के कुछ कवियों को छोड़कर शेष कितने हैं जो हमारी विस्मृति की धारा मे अन्तर्हित नहीं हो गये ? इसका कारण क्या यह नहीं है कि उन्होंने ऐसी कविता की है जो हमारे जीवन की चिर-सहचरी नहीं है ? और उसकी छोटी-सी संगति करके धीरे-धीरे हम ऐसे विलासी, निश्चेष्ट और लक्ष्य-भ्रष्ट बन गये कि उसे और उसके रचयिताओं को विस्मृति के गर्त मे ढकेल दिया ! और क्या इससे यह प्रमाणित नहीं होता कि हमे वह कविता चाहिये जो वास्तव मे हमारे जीवन की यथार्थ सहचरी हो ? हमारे कवियों को इस पर ध्यान देना चाहिये।

मैं श्रृङ्गारी कविता का विरोधी नहीं; श्रृङ्गार तो रसों का राजा है। पर उसकी भी एक मर्यादा है। वह मर्यादित रहे, तभी उसकी शोभा है। मर्यादा से बाहर हो जाने पर कोई भी रस

फीका और हानिकारक हो सकता है। हिन्दी-कविता में शृङ्गार-रस की बाढ़ आ गई है। साथ ही कविता के अन्य अंग-उपांग भी खींच-तानकर ऐसे बढ़ा लिये गये हैं कि वे उपहास के योग्य हो गये हैं। मैंने प्रहसनों-द्वारा इन्हीं सब बातों पर प्रकाश डालकर विचार करने के लिये अपने पाठकों को आमंत्रित किया है।

प्रहसनों में कहीं-कहीं व्रजभाषा का भी ज़िक्र आ गया है, इससे कोई समालोचक यह न समझें कि मैं व्रजभाषा का विरोधी हूँ। मेरे कथन में जिसे सन्देह हो, उसे इस पुस्तक के प्रहसनों को, ख़ासकर 'छायावादी कवि और चित्रकार' को ध्यान से पढ़ना चाहिये। मैंने जो कुछ लिखा है, केवल भावों को लेकर लिखा है। आगे जिसकी समझ जैसी हो, वह वैसा समझे। रोगी को औषधि की कटुता तो सहनी ही पड़ेगी।

'स्त्रियों की कौंसिल' में अपने स्वभाव का यथार्थ चित्रण पाकर कुछ स्वाधीन विचारों की स्त्रियाँ भी तिलमिला उठेंगी। पर उनको बताना चाहिये कि मैंने उनके बारे में क्या ग़लत कहा है। क्या वे पुरुषों की अपेक्षा अधिक बातूनी, वहमी और झगड़ालू स्वभाव की नहीं होतीं?

इस पुस्तक का 'दिमाग़ी ऐयाशी' नाम बाजारू-सा लगता है; पर इसमें जिस प्रधान विषय का चित्र खींचा गया है, उसका इससे अधिक उपयुक्त नाम मुझे दूसरा नहीं मिला। हमारे समालोचकों की बुद्धि बहुत प्रखर है, वे इससे अधिक ठीक बैठता हुआ कोई-न-कोई नाम बताये बिना न रहेंगे। मैं उनकी प्रतीक्षा में रहूँगा। कोई इससे सुन्दर नाम बतायेंगे तो मैं वही नाम रख दूँगा। समालोचकों के लिये मुझे इतना संतोष तो अभी से है कि मैंने इस पुस्तक की पहली ही पंक्ति से उनको उद्विग्न बना देनेवाली ख़ोराक प्रस्तुत कर दी है।

इसके कुछ प्रहसन मैंने सन् १९२४ और २५ मे लिखे थे, जो कवि-कौमुदी मासिक-पत्रिका में छपे थे। फिर वे 'स्वप्नों के चित्र' नामक पुस्तक में प्रकाशित हुये ! पर 'स्वप्नों के चित्र' में कुछ ऐसे भी प्रहसन आगये थे, जो भिन्न विषयों के थे, तथा 'स्वप्नों के चित्र' के शब्दार्थ में पुस्तक में वर्णित विषय की झलक भी नही दिखाई पड़ती थी। इससे पुस्तक का नाम बदलने की ज़रूरत महसूस हुई और नाम के अनुरूप पुस्तक के विषय भी चुनकर रखने पडे। हमने कुछ प्रहसन, जो भिन्न विषय के थे, निकाल दिये और कुछ नये जोड़ दिये। अब यह अपने ढङ्ग की एक स्वतंत्र पुस्तक हो गई।

अँग्रेज़ी मे इस तरह के प्रहसनों को 'सटायर' (satıre) कहते है। हिन्दी में 'सटायर' का पर्यायवाची शब्द अभीतक नहीं बना है। 'व्यंग्य' की सीमा 'सटायर' से छोटी है। 'विद्रूपात्मक-प्रहसन' सटायर का पर्यायवाची हो सकता है, पर बडा शब्द है। अकेला 'प्रहसन' शब्द भी 'सटायर' के साँचे के लिये छोटा पडता है; पर व्यग्य की अपेक्षा प्रहसन सटायर के कुछ अधिक निकट का शब्द लगता है, इससे मैने 'प्रहसन' का प्रयोग किया।

हिन्दी-लेखकों मे 'सटायर' लिखने की रुचि हिन्दी-साहित्य के प्रारम्भ ही से कम जान पड़ती है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कुछ लिखे थे। बालमुकुंद गुप्त और बालकृष्ण भट्ट मे भी सटायर लिखने की अच्छी क्षमता थी। इसके बाद अभी तक इसका बड़ा-सा मैदान ख़ाली ही पडा है। मै कहाँतक सफल हुआ हूँ, यह हमारे समालोचक बतायेंगे।

हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग
ज्येष्ठ पूर्णिमा, १९९७

रामनरेश त्रिपाठी

सूची —

दिमाग़ी ऐयाशी

दिमाग़ी ऐयाशी

[१]

एक गाँव मे अरुण नाम के एक महात्मा रहते थे। उनके पास मकरन्द नाम का एक नौजवान आया-जाया करता था, जो बड़ा साहसी, हृष्ट-पुष्ट, दीन-दुखियों का सहायक और अत्याचार-पीड़ितों का रक्षक तथा कुल का पालक था।

पर इधर बहुत दिनों से मकरन्द ने अरुण के पास आना-जाना छोड़ दिया था। अरुण के गाँव से मकरन्द का गाँव मील-दो-मील की दूरी पर था। अरुण ने कई बार पूछ-ताछ की, पर उनको यह पता न चला कि मकरन्द आजकल कहाँ है, और क्या करता है।

एक दिन मकरन्द के एक विनोदी मित्र ने राह चलते-चलते अरुण से कहा—मकरन्द आजकल बीमार है।

अरुण ने चौककर पूछा—बीमार है? क्या बीमारी है?

मित्र ने कहा—बीमारी का ठीक पता तो मुझे भी नहीं, पर सुनता हूं कि उसका दिमाग़ ख़राब हो रहा है।

अरुण ने मकरन्द को देखने का निश्चय किया। उन्होंने सोचा—दोपहर के समय मकरन्द ज़रूर घर पर मिलेगा। वे स्नान-भोजनादि से जल्दी निवृत्त होकर मकरन्द के गाँव की ओर चल पड़े। गाँव मे पहुँचकर जिस-किसीसे उन्होंने मकरन्द का हाल पूछा, उसीने कहा—मकरन्द का दिमाग़ ख़राब हो रहा है।

अरुण मकरन्द के सच्चे शुभचिन्तक थे। उसके दिमाग़ की ख़राबी का हाल सुनकर उनको सचमुच दुःख हुआ। जल्दी-जल्दी चलकर वे मकरन्द के घर पहुँचे। मकरन्द घर पर मौजूद नही था। उसकी स्त्री और बच्चे थे। स्त्री और बच्चे अरुण को पहचानते थे। अरुण ने मकरन्द की स्त्री से पूछा—मकरन्द कहाँ है ?

स्त्री ने उदास भाव से कहा—पता नही, कहाँ है।

अरुण ने पूछा—सुनता हूँ, वे बीमार रहा करते हैं ?

स्त्री ने एक आह भरकर कहा—हाँ वे कवि हो गये हैं।

अरुण ने चकित होकर फिर पूछा—कवि हो गये हैं ? कवि होना क्या कोई रोग है ?

स्त्री ने तत्काल कहा—रोग तो हुई है। अब रात-दिन एक कोठरी में चुपचाप बैठे रहते हैं। काग़ज़-पेंसिल हाथ मे लेकर छत की ओर टकटकी लगाये न जाने क्या देखा करते हैं। न खाने की सुध, न नहाने की। न मुझसे बोलते हैं, न बच्चों से। कभी-कभी भोजन करते समय, कभी राह चलते हुये अकारण हसने लगते हैं। मै समझ नहीं सकती कि उन्माद रोग हो गया है, या क्या ? मैं कभी कुछ पूछती हूँ तो मेरा मुँह देखने लगते हैं, जैसे कुछ सुना ही नही। कभी-कभी दातुन करना भी भूल जाते हैं। सबेरे से बैठे बैठे तीसरा पहर हो जाता है, पर वे कोठरी से निकलते ही नहीं। भूख-प्यास हरन हो गई है। गृहस्थी चौपट होती जा रही है। अब कुछ दिनों में बच्चे दाने दाने को तरसने लगेंगे।

अरुण ने पूछा—आखिर यह रोग लगा कबसे? मकरन्द पहले तो बड़े कामकाजी और साहसी पुरुष थे।

स्त्री ने गहरी आह भरकर फिर कहा—एक दिन एक दूसरे गाँव से बसन्त पंडित नाम के एक आदमी आये थे। वे तीन चार दिन लगातार हमारे यहाँ ठहरे रहे। वे ही यह रोग दे गये हैं। तबसे वे कई बार आ चुके। अब तो वे इस घर में गुरु की तरह पूजे जाते हैं। जब वे आते हैं, तब दस-पाँच लोग और बुला लिये जाते हैं। सबको अच्छे अच्छे मिष्टान्न खिलाये जाते हैं। फिर एक विचित्र बोली में लोग न जाने क्या-क्या कहते-सुनते और हँसते-हँसाते हैं।

अरुण ने मुसकुराकर पूछा—क्या मकरन्द ने कोई दूसरी बोली भी सीख ली है?

मकरन्द की लड़की ने ज़रा मुसकुराकर कहा—उसका नाम पिताजी 'ब्रज-भाषा' बतलाते थे।

अरुण ने भी मुसकुराकर कहा—अच्छा, रहते हैं यहाँ, बोलते हैं दो सौ कोस दूर की बोली। मकरन्द इस समय कहाँ मिलेंगे?

लड़की ने सामने के गाँव की ओर उँगली उठाकर कहा—उस गाँव में एक ज़मींदार हैं। पिताजी वहीं होंगे।

अरुण ने पूछा—क्या मधुकरसिंह?

लड़की ने कहा—हाँ।

[२]

अरुण मधुकरसिंह के यहाँ पहुँचकर देखते हैं, तो बैठक में एक छोटी-सी भीड़ लगी है। पन्द्रह-बीस नौजवान बैठे हैं। उनमें मकरन्द भी हैं। मकरन्द कुछ पढ़कर सुना रहे हैं और सब लोग रस में मस्त हैं। अरुण को सभी पहचानते थे। अरुण को देखते

ही सब लोग उठ खड़े हुये। मधुकरसिंह ने अरुण के लिये एक तख़्ते पर आसन लगवा दिया। अरुण उसपर बैठकर कहने लगे—मकरन्द ! तुमसे मिले हुये बहुत दिन हो गये। इसलिए मैं आज तुम्हारी खोज में निकला हूँ। तुम्हारे घर आने पर तुम्हारी कन्या ने मुझे यह स्थान बताया, तब यहाँ आया हूँ।

मधुकरसिंह ने कहा—आप बड़े मौक़े से आये। मकरन्दजी अब तो पूरे कवि हो गये। हम लोग इनकी कविता सुन रहे थे। बड़ी ललित कविता है। आप भी सुनिये।

कवि का हृदय प्रशंसा ही से तो फूलता है। मकरन्द कविता सुनाने के लिये बड़ी आकुलता से अरुण की ओर देखने लगे। अरुण ने कहा—अच्छा सुनाओ।

मकरन्द ने पढ़ा—

अलि हौं तो गई जमुना जल को
सु कहा कहौं बीर बिपत्ति परी।
घहराय कै कारी घटा उनई
इतने ही में गागरि सीस धरी।
रपट्यो पग घाट चढ्यो न गयो
मकरन्दजू ह्वै के बिहाल गिरी।
चिरजीवहि नन्द को बारो अरी
गहि बाँह गरीब ने ठाढ़ी करी॥

मकरन्द के मुँह से यह सवैया सुनकर अरुण के सिवा सब 'वाह वा' 'वाह वा' कह उठे। अरुण जानते थे कि यह मण्डन कवि का सवैया है। मकरन्द ने 'कवि मण्डन' के स्थान पर 'मकरन्दजू' जड़कर इसे अपना कर लिया है। ब्रज-भाषा में इस

तरह की चोरी बहुत चलती है। मकरन्द को इस मण्डली में लज्जित करना ठीक न समझकर अरुण ने यह कहना उचित न समझा कि यह सवैया तो मण्डन कवि का है। उन्होंने एक और ही बात छेड़ दी।

अरुण ने कहा—इसमें तो एक घटना का वर्णन है। कोई स्त्री बेचारी जमना में जल भरने गई थी। इतने में पानी बरसने लगा। उसका पैर फिसला, वह गिर पड़ी। कृष्ण ने दौड़कर, उसे उठाकर खड़ा कर दिया। ऐसी घटनाएँ तो गाँव मे रोज़ हुआ करती हैं। अभी तो परसों ही रामसिंह ने उस बुढ़िया चमारिन को, जो फिसलकर राह में गिर पड़ी थी, बाँह पकड़ उठाकर खड़ा किया था।

अरुण बडे विनोदी पुरुष थे। इससे नौजवान लोग भी उनसे खुलकर बातें किया करते थे। एक नौजवान ने कहा—आप नहीं समझे। स्त्री अभिसार स्थान से आई थी। उसके कपड़ों मे कीचड़ लग गई थी। उसे छिपाने के लिये उसने एक नया कारण गढ़ लिया। इस कविता में यही ख़ूबी है।

मकरन्द प्रसन्न होकर उस साथी की ओर हँसती हुई आँखों से देखने लगे; पर अरुण की नासमझी पर उनको थोड़ा क्षोभ भी हुआ।

अरुण ने मकरन्द से कहा—तो तुमने स्त्रियों को यह तरकीब बताई है कि किस तरह झूठ बोलकर व्यभिचार को छिपाना चाहिए। पर तुमको यह कैसे मालूम हुआ कि कृष्ण ने ऐसा किया था ?

मकरन्द—कल्पना से।

अरुण—यदि कृष्ण ने न किया हो, तो ?

मकरन्द—इससे क्या ? मैं तो कहता हूँ कि उन्होंने किया था।

अरुण—तुमको किसीके विषय में ऐसा कहने का अधिकार है ?

मकरन्द—नहीं।

अरुण—तो तुम यह कहो कि कृष्ण की आड लेकर तुम मिथ्या भाषण और व्यभिचार का प्रचार कर रहे हो।

अरुण की टीका-टिप्पणी सुनकर मण्डली के कुछ लोग उनके हिमायती हो गये। उनमे एक कायस्थ थे। वे उर्दू की शायरी किया करते थे। मकरन्द से उनकी चख़-चख़ थी। मकरन्द को अप्रतिभ होते देखकर वे ओठों मे, भौहों मे और आँखों में मुसकुरा उठे।

अरुण ने कहा—अच्छा, आगे सुनाओ।

मकरन्द ने समझा, शायद यह कवित्त प्रभाव पैदा कर सके—

कंचन से गातन सलोनी रग रावटी मे,
हिलमिल प्रेमरस बातनि पगति है।
बचन विचित्र अति केलि के प्रसगन के,
कानन सुनत सब जामिनि जगति है॥
कहै मकरन्द उर अधिक उमगन सों,
मदन तरंग अग-अंग उमगति है।
ह्वै करि निसक क्यो मयकमुखी बाल,
परजक पर जाति पिय-अक न लगति है॥

कुछ लोग 'वाह-वा' कह उठे। अरुण ने पूछा—इसमे क्या विशेषता है ?

मकरन्द ने कहा—आप समझकर बताइये।

अरुण ने पूछा—यह घटना कबकी है, और किसके घर की है?

मकरन्द ने कहा—न इसका कोई समय है, न कोई घर। यह तो कल्पना है।

अरुण—तब तुम अपना काम-धन्धा छोड़कर इस व्यर्थ के झंझट मे क्यों पडे हो? पराई स्त्रियों की कल्पित चर्चा करने में तुमको या तुम्हारे सुननेवालों को क्या लाभ पहुँच रहा है?

मधुकरसिंह ने मकरन्द का पक्ष लेते हुये कहा—यह तो समय बिताने के लिये एक मनोरंजक काम है।

अरुण—पर इस काम का परिणाम क्या होगा? नौजवानों की दिमाग़ी ऐयाशी बढ़ेगी। सब लोग अपने घर के ज़रूरी काम-काज छोडकर मानसिक व्यभिचार में प्रवृत्त होंगे; विषयी बनेंगे; निर्बल होंगे और स्त्रियों को कुलटा बनायेंगे। इससे लाभ?

दिमाग़ी ऐयाशी की बात सुनकर सब लोग जाग-से उठे। अब प्रायः सभी अरुण के पक्ष में आ गये। यह देखकर मकरन्द को कुछ जोश आया। उसने कहा—भाषा के बडे-बडे आचार्यों ने इसी प्रकार की कविता की है। क्या वे लोग मूर्ख थे?

अरुण ने शान्ति से कहा—मूर्ख तो नहीं थे। मूर्ख होते, तो ऐसी कल्पना नहीं कर सकते। हाँ, पेट के ग़ुलाम ज़रूर थे। उन्होंने अपने आश्रय-दाताओं की कामुकता की वृद्धि की है, और उन्हे प्रसन्न करके जीविका प्राप्त की है। वे दोनों लाभ में रहे। उन कवियों की कविता सुनकर आश्रय-दाताओं की रसिकता बढ़ी, उन्होंने विषय-भोग का सुख या दुःख भोगा। उसके बदले में कवियों ने अन्न, गाँव और हाथी-घोडे पाये; पर तुम क्यों उसपर सती हो रहे हो? अपनी स्त्री और बाल-बच्चों की चिन्ता

छोड़कर, दीन-दुखियों की सहायता का काम छोड़कर, ईश्वर का भजन-पूजन छोड़कर, किसी एकान्त कोठरी में बैठकर जो तुम दूसरे स्त्री-पुरुषों की काम-लीलाओं की कल्पना किया करते हो, इससे तुमको और तुम्हारे साथियों को क्या लाभ है ? कोई कन्या युवती हो रही है, होने दो। यह तो प्रकृति का नियम है। तुम क्यों परेशान हो ? पराई कन्या को क्या तुम अपनी कन्या नहीं समझते ? यदि तुम्हारी कन्या के विषय में कोई ऐसी कविता रच दे, तो ?

उर्दू के शायर—तब आटे-दाल का भाव मालूम हो।

अरुण—आपको भी ऐसी कविता से घृणा जान पड़ती है।

शायर—बेशक, इसीसे तो मैंने उर्दू की शायरी शुरू की है;

अरुण—अच्छा, घबड़ाइये नहीं। अभी आपकी शायरी भी सुनी जायगी।

मकरन्द—अच्छा, अब ब्रज-भाषा के बड़े-बड़े कवियों की कविता सुनिये।

अरुण—सुनाओ

मकरन्द—

कानन लौं अँखियाँ ये तिहारी
हथेरी हमारी कहाँ लगि फैलिहैं।
मूँदे तऊ तुम देखती हौ
यह कोरैं तिहारी कहाँ लों सकेलिहैं॥

कान्हरहू को सुभाव यहै
उनको हम हाथन ही पर मेलिहैं।
राधेजू मानो भलो कि बुरो
अँखमूँदनो साथ तिहारे न खेलिहैं॥

मकरन्द—यह तो कल्पना है।

अरुण—ऐसी झूठी कल्पना से लाभ?

मकरन्द—कुछ नहीं, केवल मनोरंजन।

अरुण—ऐसे मनोरंजन से क्या हानि नहीं हो सकती?

कई श्रोता—अवश्य हो सकती है। इसे सुनकर बहुत-सी स्त्रियों को शौक होगा कि वे पानी भरने के बहाने अपने यारों से मिलें, और घर आकर देवरानी-जेठानी के सामने बदन पर खरोंच लगने या वस्त्र फट जाने का झूठा बहाना बता दें।

केवल मधुकरसिंह चुप रहे।

मकरन्द—(कुछ खिसियाकर) अच्छा, और सुनिये—

नित बैठे रहैं अपने पलका
 ऋषिराजन का जिन ज्ञान गहा।
विषयादिक भोजन छाँडि सबै
 परमारथ पै जिन चित्त गहा।
हरि के जन जान सनेही सुजान
 अलोन को सुन्दर रूप लहा।
अलि जो बहिरा तो हमारो पिया
 अरु जो अधरा तो तिहारो कहा॥

अरुण—इसका यही अभिप्राय है न? कि कोई स्त्री किसी पुरुष को इशारे से कह रही है कि मेरे पति लँगड़े हैं, वेदान्ती हैं, नपुंसक हैं, परमार्थी हैं, भगवान के भक्त हैं, भौंरे की तरह काले हैं, बहरे और अन्धे हैं। उनके पास भी हम दोनों आनन्द से विहार कर सकते हैं।

मकरन्द—जी हाँ, यही भाव है।

बाँट रहा है, अँग्रेज़ राज कर रहा है, और कवि लोग ? एक कोठरी में बैठकर बेसिर-पैर की बातें सोच रहे है, झूठ बोल रहे हैं, झूठ बोलना सिखा रहे हैं, व्यभिचार बढ़ा रहे हैं, आलस्य, उन्माद, विषयवासना, पर-स्त्री गमन की रुचि और अविवाहिता कन्याओं के साथ दुराचार की प्रवृत्ति बढ़ा रहे हैं। यह भी कोई धन्धा है ?

मकरन्द—दो-एक और सुन लीजिए तब निर्णय कीजिये—

औधि आधी रात की पै आपनो बताये गेह,
देखि अभिलाषा मिलिबे को सुखदाय के।
भूमि ही में कैयो डारि तोसक बिछौना कीन्हे,
आसपास धर दीन्हे चौसर बनाय के॥
पानी पान अतर नजीक सब राखे लाय
गूजरेटो रघुनाथ औरा चित चाय के।
खोलि राखी खिरकी बुझाइ राखे दीर द्वार
लाइ राखे नैन कोर आहट में पाय के॥

अरुण—इससे तुम्हें क्या ? पहले तो यही घोर पाप है कि कोई स्त्री पर-पुरुष के लिये ऐसी उत्कंठिता हो, और यदि कोई हो भी, तो तुम्हें या 'रघुनाथ' को क्या पड़ी है कि उसकी चिन्ता अपने सिर लो ?

मकरन्द—तब तो फिर कविता कोई चीज़ ही न रह जायगी।

अरुण—रह क्यों न जायगी ? कविता-द्वारा ऐसी बातों का प्रचार करो, जिनसे सुननेवालों में सदाचार, सात्विक प्रेम, विवेक, पवित्र विनोद और आनन्द जाग्रत हो। स्त्री-पुरुषों के केवल काम-सम्बन्धी अश्लील चर्चा से क्या लाभ ? कोई नवयौवना

बड़ी सुन्दरी है, पर वह तुम्हे मिल तो नहीं रही है। कोई पतिव्रता अपने पति के लिये बहुत व्याकुल है। मान लो कि विरह की ज्वाला से वह कुछ सन्तप्त ही है, तुम उसके शरीर को आवाँ, पजावा, दावा और तावा बनाकर हल्ला मचाते घूमते हो। यह भी कोई शिष्टाचार है?

मकरन्द – ब्रज-भाषा की कविता मे तो यही सब है।

अरुण—यही सब क्यों है? उसमे और भी बहुत कुछ है। हाँ, यह कह सकते हो कि उसमे रुपये में बारह आना इस प्रकार की दिमाग़ी ऐयाशी ही है। पर तुम्हे क्या गरज़ पड़ी है कि तुम ब्रज-भाषा ही में कविता रचो। अपनी देशी बोलचाल मे क्यों नहीं कुछ लिखते, और ब्रज भाषा की नक़ल क्यों करते हो?

मकरन्द—सच्ची बात यह है कि उसमें भावों की कमी नहीं रहती।

अरुण—सच्ची बात तो यह है कि उसमे चोरी करने का बड़ा मौका रहता है। पहले जो तुमने दो छन्द अपने नाम से सुनाये थे, वे मण्डन और प्रताप के थे, उनमें तुमने अपना नाम जोड़ लिया था। मैं तुम्हें लज्जित करने के लिये यह नही कहता हूँ। ब्रज-भाषा के सभी कवि शुरू-शुरू मे ऐसा ही करते हैं। जो बात परम्परा से चली आई है, उसका पालन करने में तुम विवश हो।

एक दूसरे साथी ने कहा—एक छन्द मुझे भी याद है। बताइये, इसमे क्या दोष है?

किंकिनी छोरि छपाई कहूँ
कहुँ बाजनी पायल पाँय ते नाई।
त्यों पदमाकर पातहु के
खरके कहुँ काँपि उठै छबि छाई॥

लाजहि ते गडि जात कहूँ
अडि जात कहूँ गज की गति भाई ।
बैस की थोरी किसोरी हरे हरे
या विधि नन्दकिसोर पै आई ।।

अरुण—पद्माकर किसी भले घर की 'वैस की थोरी किसोरी' को 'नन्दकिसोर' के पास उडाये लिये जा रहे हैं। यही भाव है न? पद्माकर को क्या अधिकार था कि वे उस 'किसोरी' और 'नन्दकिसोर' के गुप्त प्रेम को इस तरह गली गली कहते फिरते! और यदि यह बात केवल कल्पना है तो तुम्ही बताओ, क्या कोई सद्गृहस्थ किसी पर-पुरुष के साथ किसी अविवाहिता कन्या के गुप्त प्रेम का समर्थन करेगा? वह पुरुष चाहे नन्दकिसोर हो, चाहे छन्दकिसोर, पर है तो पर-पुरुष ही। क्या पद्माकर ने कन्याओ को यह प्रोत्साहन नहीं दिया कि विवाह से पहले ही पर-पुरुष से उनका मिलना साहित्य मे अधर्म नही गिना जाता? अथवा, क्या उन्होंने अबोध और लज्जावती कन्या को पर-पुरुष के पास जाने की तरकीब नही बताई? कोई भी चरित्रवान् मनुष्य ऐसी कविताओं का समर्थन नही करेगा।

शायर—आप बिलकुल सच कहते है। हिन्दी की शायरी—ख़ासकर ब्रज भाषा की शायरी ऐसे ख़यालात से पुर है, जिनसे तहज़ीब का गला दबता है, और अवाम में ऐयाशी का मर्ज़ बढ़ता है। अच्छा, जनाब! उर्दू शायरी के बारे में आपके क्या ख़यालात है?

अरुण—सच बोलने के लिए आप माफ़ फ़रमाइयेगा। दर-असल 'दिमाग़ी ऐयाशी' लफ़्ज़ उर्दू शायरी ही के लिए मौज़ूँ है। उर्दू शायरी तो नाउम्मेदी का गीत है। उसमे ख़ून-खच्चर

खूब है। जहाँ देखो, वहीं कोई तड़प रहा है, कोई क़त्ल हो रहा है, कोई रो रहा है, कोई दीन-दुनिया से जुदा होकर सहरा में बैठा है। कोई आह कर रहा है, कोई कलेजा थामकर उहूँ कर रहा है, कोई बुलबुल का घोंसला उजाड़ रहा है, कोई सैयाद को ललकार रहा है, कोई कब्र में भी ऐसी गरम आहे ले रहा है कि आसपास के मुरदे उठकर भाग रहे है, कोई क़ब्र मे भी इतना रो रहा है कि आसपास के अंधे कुएँ पानी से भर गये हैं; कोई विरह से इतना गरम हो रहा है कि जहन्नुम भी उसे निगलकर उगल रहा है। इस तरह की गिनी-गिनाई कुछ बातों के बीच मे उर्दू शायरी कुलाँचे मार रही है। किसी उर्दू-शायर का दीवान खोल लीजिये, तो मालूम होता है कि किसी क़साईखाने में घुस गये हैं। कहीं तलवार चल रही है, कहीं भाले। मगर यह सब तूफान शायर के हाँडी-भर सिर के अन्दर ही का है। बाहर न कहीं कोई क़त्ल हो रहा है, न कोई कहीं मर रहा है, न कोई कहीं क़ब्र मे रो रहा है, और न कोई कहीं जल रहा है। यह एक तरह का दिमाग़ी रोग है, जो शायर मे भी है और सुननेवालों में भी। जब कोई बेकार बैठकर इश्क़ की बातें सोचा करे और नसीब कुछ न हो, तो उसे दिमाग़ी ऐयाशी न कहें तो क्या कहें?

शायर—आप बजा फरमाते है। मगर हज़रत, माफ़ कीजियेगा, शायरी के लिये 'दिमाग़ी ऐयाशी' लफ़्ज़ हतक-आमेज़ है।

अरुण—सब प्रकार की कविता के लिये तो मैं यह शब्द नहीं कहता हूँ। मैं तो हिन्दी और उर्दू की उन तमाम कविताओं के लिए यह शब्द व्यवहार करता हूँ, जिनमें अश्लीलता और अतिशयोक्ति है।

मधुकरसिंह—अश्लीलता की बात तो मेरी समझ मे आ गई। पर अतिशयोक्ति से आपका क्या अभिप्राय है?

अरुण—अतिशयोक्तियों से तो पुरानी कविता भरी हुई है। पहले एक कवित्त मकरन्द ने सुनाया था न ? जिसमें छाती से बाती जला देने की बात थी। अब भी लोग वही पुरानी लकीर पीटते हुए चले जा रहे हैं। आजकल कितने ही कवि ऐसे हैं, जो यही सोच रहे हैं कि गज को उबारने के लिए भगवान् कितनी जल्दी दौडे। क्षणों के छोटे से-छोटे टुकडे करके वे यह समझाने की कोशिश में लगे है कि भगवान् बड़ी जल्दी आये। कोई इस कल्पना में लगा है कि द्रौपदी की चीर का कितना बडा अम्बार लग गया था। वह चीर की बडी से-बडी लम्बाई बताने की ताक मे हैं। कोई भीष्म को मारने के लिये चक्र लेकर दौडते हुये श्रीकृष्ण की सुन्दरता के बखान मे लगा है। वह कहता है—

वा पटपीत की फहरान

उसकी समझ मे श्रीकृष्ण महाभारत की लडाई में दुपट्टा ओढ़कर गये थे। कवि यह नहीं सोचता है कि प्रसग कैसा था ? उसे तो दुपट्टा फहराने से मतलब ! आदमी दौडता है, तो उसके कपड़े फहराते हैं, और वह दृश्य अच्छा भी लगना है। इसी बात को लेकर श्रीकृष्ण के दौड़ने पर कवि दुपट्टा लेकर वहाँ हाज़िर हो गया। अब कवि के साथ श्रोता भी 'वा पटपीत की फहरान' पर मस्त हो रहे हैं। कोई पूछनेवाला नही कि श्रीकृष्ण उस वक्त लडाई के मैदान मे थे कि ससुराल में ? और वे दुपट्टा ऐसा लपेटकर बैठे थे कि रथ पर से कूदते ही वह फहराने लगा ? कोई कवि पतली कमर के लिये महीन से महीन चीज़ों की खोज में है। नितम्ब और स्तनों के लिये पहाड़ उठाये ला रहा है। कोई कटाक्षों के बदले तीर, भाला, बरछी और तलवार लेकर श्रोताओं को चौका रहा है। कोई अजामिल, गीध, गनिका, सेवरी के मुकाबले

में अपने पापों की एक लम्बी सूची तैयार करने में निमग्न है। कोई विरहाग्नि की भयानकता की कल्पना करने में अपनी आयु का तेल व्यर्थ जलने दे रहा है। यही सब 'दिमाग़ी ऐयाशी' है। इस प्रकार की शायरी के लिये दिमाग़ी ऐयाशी' शब्द वैसा ही उपयुक्त है, जैसा ब्रिटिश पार्लमेंट के लिये महात्मा गांधी का वेश्या शब्द। (मकरन्द से) मकरन्द! तुम क्या सोच रहे हो?

मकरन्द—मेरी आँखें कुछ कुछ खुल रही हैं। मैं सोच रहा हूँ कि मैं इस रोग में कैसे फँसा? क्या आप कृपा करके मेरे कविता गुरु बसन्त पण्डित से मिलियेगा?

अरुण—अवश्य। वे कहाँ रहते हैं?

मकरन्द—रुद्रपुर में।

अरुण—जहाँ के ठाकुर साहब तुम्हारे बड़े विरोधी हैं?

मकरन्द—जी हाँ।

अरुण—चलो।

[२]

अरुण और मकरन्द बसन्त पंडित के घर पहुँचे। बसन्त पंडित ने दोनों की बड़ी अभ्यर्थना की। साधारण शिष्टाचार से निवृत्त होकर तीनों व्यक्ति बातचीत करने लगे—

अरुण—मकरन्द ने आपको अपना कविता-गुरु बनाया है। आपने मकरन्द को कविता की जो शिक्षा दी है, उसका परिणाम यह हुआ है कि ये अब घर-गृहस्थी से विरक्त हो गये हैं। दिन रात काग़ज़-पेंसिल लिये व्यर्थ की बातें सोचा करते हैं। अपने साथी दस-बीस नौजवानों को भी इन्होंने इसी रोग में फँसा लिया है। आप कृपा करके इनको वह मार्ग दिखाइये, जिससे कम से-कम इनके स्त्री बच्चे तो भूखों न मरें।

बसंत पंडित पश्चात्ताप प्रकट करने के स्वर में कहने लगे—मैं अब पछता रहा हूँ कि इनके नाश के लिए ही मैंने इन्हे इस तरह की कविता में फँसाया था। आप तो जानते ही हैं, रुद्रपुर के ठाकुर से इनका बैर चल रहा है। उनकी प्रजा इनके हाथ में है। दीन-दुखियों के ये सहायक हैं। पर्वत के समान धैर्यवान और सिह के समान साहसी हैं। विवेकशील और न्याय-निष्ठ हैं। कर्तव्य-कुशल और नीति निपुण है। ठाकुर साहब इनको किसी तरह दबा नही सकते थे। अँग्रेजी राज है। प्रत्यक्ष मे इनपर कोई प्रहार करने में वे समर्थ नहीं थे। इसीसे विष का घूँट पी-पीकर वे रह जाया करते थे। एक दिन उन्होंने कहा—इस शत्रु को जा निर्बल कर दे, उसे मैं इक्यावन बीघे जमीन दूँगा। इसपर मैंने कमर कसी। मै इनके यहाँ पहुँचा। मैंने इन्हे शृङ्गारी कविता का मीठा विष दिया। उस विष के प्रभाव से ये धीरे-धीरे सब हलचलों से विरक्त हो गये। एक कोठरी में क़ैद हो गये। कामुकता की बात सोचते-सोचते निर्बल हो गये। किसी के संकट में साथ न देने से ये धीरे-धीरे प्रजा के विरक्ति-भाजन हो गये। इनके हृदय में न अब वह तेज है, न वाणी में प्रभाव। जनता मे अब इनके विषय में यह प्रसिद्ध है कि ये रात-दिन लड़कों की सङ्गति में रहते हैं, हाहा हूहू में समय काटते हैं, इनको रिश्वत देकर रुद्रपुर के ठाकुर साहब ने बैठा दिया है। मेरी दवा लग गई, और मुझे इक्यावन बीघे ज़मीन का पट्टा भी मिल गया। पर मैं अब पछता रहा हूँ। क्योंकि मकरन्द के नाश से निर्भय होकर रुद्रपुर के ठाकुर का अत्याचार फिर बढ़ गया है। अभी कल ही मुझपर भी एक प्रहार हो गया है। मैं आज सोच ही रहा था कि मकरन्द का जादू उतार लूँ। उसे फिर जगा दूँ। नहीं तो दीन-दुखियों का पाप मुझपर लगेगा। मकरन्द का नैतिक-पतन अभी

पूर्ण-रूप से नहीं हो पाया था कि इसके और प्रजा के सौभाग्य से आप इन्हें मिल गये। नहीं तो थोड़े ही दिनों में कविता का दीमक इनको चाट जाता। महाराज ! शायरी वह भयानक रोग है, जिसने दिल्ली और लखनऊ की बादशाहत हड़प ली। मकरन्द किस खेत की मूली हैं ?

अरुण ने पूछा—मधुकरसिंह को किसने प्रवृत्त किया ?

बसन्त पंडित—मैंने। मकरन्द से वह भी भयभीत रहता था। मकरन्द के आतंक से वह भी प्रजा पर मनमाना अत्याचार नहीं कर सकता था। मैंने उसे सुझाया कि मकरन्द को यह विष पिला रहा हूँ, तुम इसे उत्साहित करते रहना। वह आदमी चतुर है। उनसे मकरन्द ही को नहीं, इसके सब नौजवान साथियों को भी इसी नशे में फँसा लिया। आजकल तो उसकी बैठक इन सबका अड्डा है। इन सबको बैठक में क़ैद करके, कभी दो-चार पैसे की भंग पिलाकर, इनकी कविता की झूठी तारीफ़ करके वह इनको बेवकूफ बनाये हुए है, और प्रजा पर मनमाने ज़ुल्म कर रहा है।

अरुण—मकरन्द, सुनते हो ?

मकरन्द चुप। दोनों चुपचाप उठकर बसन्त पंडित को नमस्कार करके अपने-अपने घर चले आये। रास्ते में कोई किसी से एक शब्द भी नहीं बोला।

कवि

स्थान—नदी-तट। एक पुष्पित-वृक्ष से पीठ अड़ाकर, नदी की ओर मुख कर कवि बैठा है। बायें हाथ में कागज़, दाहिने में क़लम है। दृष्टि आकाश की ओर लगी है। मुखाकृति से गम्भीर चिन्ता का भाव प्रकट हो रहा है।

समय—सूर्योदय।

(एक गरीब किसान का प्रवेश)

किसान—आप कौन हैं ?

कवि—मैं कवि हूँ।

किसान—आप क्या कर रहे हैं ?

कवि—मैं कविता कर रहा हूँ।

किसान—कविता क्या चीज़ है ?

कवि—उसे तुम नहीं समझ सकते। कोई सहृदय व्यक्ति ही समझ सकता है।

किसान—अच्छा, तो मै सहृदय नहीं हूँ। कोई हर्ज नहीं। आपके चेहरे से बड़ी चिन्ता टपक रही है। आपको देखकर मुझे दया आती है। क्या मैं आपकी कोई सहायता कर सकता हूँ ?

कवि—(अभिमान की हँसी हँसकर) हाँ, कर क्यों नहीं सकते ! मै इस चिन्ता में हूँ; सुनो—

समस्या है—

निशिनाथ छिप्यो घन घूँघट में।

मुझे इसीकी पूर्ति करनी है। तुक तो मैंने लिख लिये हैं। जैसे—पट मैं, लट मैं, गटागट मैं, घट मैं, तलछुट मैं, ठट मैं, संकट मैं, पनाघट मैं। इत्यादि; तीर की गाँसें तैयार हैं, सरकंडे लगाने बाक़ी हैं। बताओ तुम क्या सहायता करोगे?

किसान - पनाघट क्या चीज़ है?

कवि—सवैया में 'पनघट' ठीक बैठता नहीं, इसलिये उसे 'पनाघट' कर लिया है।

किसान—आप शब्दों को चाहे जैसा तोड़-मरोड़ सकते हैं?

कवि—हाँ।

किसान—आप इस व्यर्थ की चिन्ता में क्यों फँसे हैं?

कवि—(कुछ खीझकर) यह व्यर्थ की चिन्ता है? तो क्या मैं इस चिन्ता में पड़ूँ कि तुम्हारी फ़सल कैसी है? ज़मींदार, पुलीस, पटवारी और महाजन तुम्हारा रक्त रात-दिन कैसे चूस रहे हैं? तुम्हारे नरक ऐसे घर, जो सुअरों के रहने योग्य भी नहीं, क्या मेरी चिता के विषय होंगे?

किसान—आप यदि हमारी चिंता करते तो शायद अधिक सुखी होते।

कवि—अच्छा, जाओ, हर्ज मत करो। विषयान्तर होने से भावों का प्रवाह रुक जाता है।

किसान—(मन में) इसका दिमाग़ गरम हो रहा है।

(जाता है)

(ज़मींदार के लड़के का प्रवेश)

लड़का—आप क्या कर रहे हैं?

कवि—मैं तुक पकड़ रहा हूँ।

लड़का—कहाँ से?

कवि—अनन्त ब्रह्माण्ड से।

लड़का—तुक क्या मछलियाँ है ?

कवि—मछलियाँ नहीं हैं। पर उनको पकड़ने के लिये परिश्रम वैसा ही करना पड़ता है।

लड़का—(ज़रा सोचकर) जान पड़ता है, आप कवि हैं ?

कवि—ख़ूब समझा। किसी सहृदय साहित्य-रसिक के लड़के जान पड़ते हो ?

लड़का—हाँ, मेरे पिता भी कवि हैं। मेरे यहाँ रात भर कवियों का जमघट लगा रहता है। बड़ा आनन्द आता है।

कवि—('जमघट' को काग़ज़ पर लिखकर और किसी गुप्त रस-लोलुपता से प्रेरित होकर) उनसे मिलने का कौन-सा समय अच्छा होगा ?

लड़का—रात मे बारह बजे के बाद।

कवि—(आश्चर्य से) बारह बजे के बाद ? क्या रात मे सोते नहीं ?

लड़का—नहीं, दिन मे सो लेते है। कोई काम-धन्धा विशेष तो रहता नही। समय बिताना कठिन हो जाता है। मेरे पिता प्रातःकाल चार बजे रात का भोजन करके सो जाते है। दिन-भर सोते रहते है। दोपहर के बाद दो बजे के लगभग जागते है। फिर बाहर बैठकर एक घण्टे तक ख़ुमार मिटाते हैं। चार बजे के लगभग स्नान-ध्यान करके भोजन करते हैं। फिर टहलने निकलते हैं। सूर्यास्त होते-होते हवा खाकर आ जाते हैं, तो रात में दस-ग्यारह कभी-कभी बारह बजे तक अपने कारिंदों और पटवारी के साथ रियासत के काम-काज की बातें करते हैं। इसके बाद उनको अवकाश मिलता है, तब साहित्य-चर्चा में लग जाते हैं।

कवि—यड़ी विचित्र दिन-चर्या है !—तब तो मुझे भी दिन में सोकर आना चाहिये ।

लड़का—और क्या ? पर आजकल कभी-कभी दिन में जल्दी ही जग जाते हैं ।

कवि—क्यों ?

लड़का—कुछ स्वार्थी लोगों ने किसानों का दिमाग़ फेर दिया है । उनको ज़मींदार के विरुद्ध उभाड़ा है । उनको दमन करने की तरकीबें करने के लिये पिताजी को कारिंदे, पटवारी और पुलीस से दिन ही में मिलना पड़ता है ।

कवि—हाँ, हाँ, किसानों का दिमाग़ फिरा हुआ जान पड़ता है । अभी एक किसान आया भी था । वह सनकी-जैसी कुछ बातें कर भी रहा था । मैंने उसे डाटकर भगा दिया ।

लड़का—तब तो आप ज़मींदारों के पक्षपाती जान पड़ते हैं ?

कवि—पक्षपाती तो हई हैं ।

लड़का—आजकल के कुछ कवि लोग तो किसानों ही का पक्ष समर्थन करते हैं ।

कवि—वे कवि हैं कि कठफोड़वा ? वे खड़ी बोली के खूसट कवि हैं ।

लड़का—अच्छा, तो आप प्राचीन शैली के कवि हैं ?

कवि—हाँ । यहाँ नीरस चर्चा का क्या काम । रात-दिन राधा-माधव के विलास की कल्पना में हम लोग मस्त रहते हैं । नख-शिख वर्णन के लिये नई-नई चीजों की खोज मे रहते हैं । नायिकाओं की आनन्द-वर्धक चर्चा में छके रहते हैं । यहाँ किसानों, कुलियों, मजदूरों, चमारों-सियारों का दुःख लेकर रोने की किसको फुरसत है ?

लड़का—(प्रसन्न होकर) तब तो आपसे मेरे पिता बहुत प्रसन्न होंगे । आइयेगा, मैं पिताजी से आपकी चर्चा कर

रक्खूँगा। (कुछ ठहरकर) मैंने तो आपका बड़ा समय ले लिया। कहिये, आप क्या सोच रहे थे ?

कवि—'घुग्घू' समस्या की पूर्ति में लगा हूँ। आज कई दिन हो गये, रोज यहाँ एकान्त में आकर बैठता हूँ। कभी-कभी तो सारा दिन यहीं बिना खाये-पिये बीत जाता है। 'घुग्घू' का कोई तुक ही नहीं मिलता।

लड़का—(कुछ सोचकर) मैं इसकी पूर्ति कर सकता हूँ।

कवि—(प्रसन्न होकर) अच्छा, करो।

लड़का—लिखते चलिये—

ऐसे बड़े तुम घामड हो
निज गाँव को नाँव बतावत घुग्घू।

कवि—वाह वा, वाह वा; बड़ी अच्छी पूर्ति है। गाँव और नाँव का अनुप्रास बड़ा अच्छा मिला है। आगे ?

लड़का—(कुछ सोचकर)।

भोजन का करिहौ ? हम पूछे तो
पूरी को नाम कह्यो तुम पुग्घू॥

कवि—(प्रसन्न होकर) आगे ?

लड़का—

जौ लगि बूझन अर्थ लगे,
तब ताईं कह्यो तरकारी को तुग्घू।

कवि—(उछलकर) अब एक ही चरण और बाक़ी है।

लड़का—

साहित को कछु ज्ञान तुम्हें नहि
हौ तुम पूरे निदाघ के घुग्घू॥

कवि—(उठकर, लड़के को आलिङ्गन करके) धन्य है, तुम्हारे माता-पिता को धन्य है। तुमने अपने वंश को उजागर किया है। भरी सभा में मैं तुमको कवि-सम्राट् की उपाधि से विभूषित करूँगा। पर सभा में इस पूर्त्ति को तुम अपनी न बताना। लोग तुम्हारा विश्वास न करेंगे। जब मैं इतने दिनों तुकों के चक्कर में पड़ा रहा, तब तुम इसे अपना कहोगे तो लोग यही कहेंगे कि तुमने किसीसे पूर्ति करा ली है।

लड़का—मैं किसीसे नहीं कहूँगा। अच्छा, अब तो जाता हूँ।

(जाता है)

(एक कारीगर का प्रवेश)

कारीगर—आपको मैं कई दिनों से यहाँ बैठा देखता हूँ।

कवि—तुम रोज़ इधर क्यों आते हो ?

कारीगर—मैं काम की तलाश में इसी रास्ते से होकर गाँव को जाता हूँ। आपको यहाँ बैठे देखकर मैं सोचता हूँ कि क्या आपकी कोई प्यारी चीज़ खो गई है ? या कोई मर गया है ? या किसीके भय के मारे आप यहाँ बैठकर दिन काटते हैं ? आज कौतूहल निवारण के लिये आपसे पूछता हूँ। क्षमा कीजियेगा। आप कौन हैं ?

कवि—मैं कवि हूँ।

कारीगर—कवि क्या काम करते हैं ?

कवि—कविता।

कारीगर—ज़रा कविता मुझे भी दिखाइये। मैं खिलौने बहुत अच्छे अच्छे बनाने जानता हूँ। देखूँ तो सही, आपकी कविता मेरे खिलौने से अच्छी है, या ख़राब।

कवि—खिलौना आँख का विषय है। कविता कान का। कविता सुन सकते हो।

कारीगर—अच्छा, सुनाइये।

कवि—सुनाऊँ क्या? अभी तो पूरी बनी ही नहीं। ऋतुराज का वर्णन कर रहा हूँ। एक कवि ने लिखा है—

आज ऋतुराज रँगरेज बनि आयो है।

मै उसे अँगरेज़ बनाना चाहता हूँ।

कारीगर—ऋतुराज ने आपका क्या बिगाडा है? जो उसे आप अँगरेज़ बना देंगे।

कवि—बनाया-बिगाडा क्या है? एक नई कल्पना है। सहृदय लोग सुनकर प्रशंसा करेंगे।

कारीगर—पर ऋतुराज तो देश मे नवजीवन का प्रवाह पैदा करता है। अँगरेज़ों ने तो देश का रस चूसकर उसे निर्जीव कर दिया है। हमारे गृह-शिल्प का ऐसा नाश किया कि हम आज भूखों मर रहे है। सारा बाज़ार विदेशी चीज़ों से भरा हुआ है। हमे कोई पूछता नहीं। लड़के घर मे भूखों मर रहे है। कई दिनों से मै काम के लिये फिर रहा हूँ। कहीं काम नही मिलता। आप ऐसी बात क्यों नहीं सोचते जिससे हम ग़रीबों का लाभ हो?

कवि—शृङ्गार मे तुमने यह वीभत्स रस कहाँ से लाकर डाल दिया? अँगरेज़ अपना काम करते हैं, मै अपना काम करता हूँ, तुम अपना काम करो।

कारीगर—कहिये तो मैं भी कविता करने लगूँ?

कवि—मेरे शिष्य हो जाओ।

कारीगर—मेरे घर में चार पाँच प्राणी हैं। सबका भोजन आपको देना होगा।

कवि—वाह, मैं तो ख़ुद दूसरों का मुँह ताकता फिरता हूँ। तुम मुझसे क्या आशा करते हो?

कारीगर—तो आप ऐसा काम क्यों करते हैं, जिससे आपको दूसरों का मुहताज होना पड़ता है?

कवि—(झुँझलाकर) भई, सिर मत खाओ। जाओ।

कारीगर—(मन मे) यह कोई सनकी है।

(जाता है)

(एक व्यापारी का प्रवेश)

व्यापारी—आप यहाँ क्या सोच रहे हैं?

कवि—श्रीराधा महारानी ने श्रीकृष्णचन्द्र के लिये 'चीर चोर' शब्द का प्रयोग किया है। मै सोच रहा हूँ कि श्रीकृष्णचन्द्र भी इसी तरह का कोई चुभता हुआ शब्द राधाजी के लिये कहें।

व्यापारी—क्या आप जो कुछ सोचते हैं, श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् वही कहते हैं? उन्हें जो कुछ कहना था, वे तो कह चुके होंगे न? आप उनकी चिन्ता हज़ारों वर्ष बाद अपने सिर मे लिये क्यों परेशान हैं? आप यह क्यों नहीं सोचते कि मैनचेस्टरवालों ने भारतीय व्यापार के सम्बन्ध मे क्या कहा? और अब हम लोगों को उसके उत्तर में क्या कहना और क्या करना चाहिये?

कवि—यह मेरा काम नहीं।

व्यापारी—आपका काम क्या है?

कवि—मेरा काम है कल्पना करना।

व्यापारी—आपकी कल्पना से किसको लाभ पहुँचता है ?

कवि—मुझको ।

व्यापारी—कैसे ?

कवि—लोग सुनकर वाह-वाह करते हैं ।

व्यापारी—इससे आपकी घर-गृहस्थी का काम कैसे चलता है ?

कवि—जो कल्पना सुनने के प्रेमी हैं, वे ही चलाते हैं ।

व्यापारी—आप स्वदेश और स्वजाति के विषय में कोई अच्छी कल्पना क्यों नहीं करते ?

कवि—यह कविता का विषय नहीं है ।

व्यापारी—(तरस खाकर, मन में) यह बड़ा ही भाग्यहीन व्यक्ति है ।

(जाता है)

(एक चमार का प्रवेश)

चमार—आप कौन हैं ?

कवि—मैं कवि हूँ ।

चमार—बेगार करते करते मेरा परिवार परेशान है । एक महीने हो गये, ज़मींदार ने एक पैसा भी नहीं दिया । क्या करें ? कहाँ जायँ ? क्या खायँ ? क्या आप कोई ऐसा छन्द नहीं बना सकते जिसे सुनकर ज़मींदारों के चित्त में दया उत्पन्न हो और बेगार बन्द हो ?

कवि—मैं इस पचड़े में नहीं पड़ता ।

चमार—तब आप क्या सोच रहे हैं ?

कवि—मैं सोच रहा हूँ कोई अद्भुत बात ।

चमार—जैसे ?

कवि—जैसे, मैं सोच रहा हूँ कि विरहिणी हवा से भी पतली हो गई है और दिखाई नहीं पड़ती । लेकिन उसके शरीर पर के

कपड़ों को मैं कहाँ छिपाऊँ ? मैंने उपमा तो सोच ली है कि विरहिणी के शरीर पर कपड़े इस तरह जान पड़ते हैं, जैसे अंत:करण पर वासनाओं का आवरण। पर ऐसा कहने से शृङ्गार-रस में शान्त-रस घुसा आ रहा है। रस का विरस होना चाहता है। यही चिन्ता है। बोलो, कुछ समझे ?

चमार—मुझे तो भूख लगी है। विरहिणी की चिन्ता करूँ या अपनी ?

कवि—(खिझकर) तब कवियों के पास तुम्हारा क्या काम ? जाओ, भाग जाओ।

चमार—(मन में) कोई पागल है।

(जाता है)

(खड़ीबोली के कवि का प्रवेश)

ख० कवि—कहिये; कविजी ! आजकल क्या विषय चल रहा है ?

कवि—वही नख-शिख और नायिका-भेद, जो कविता के आचार्यों का प्रधान विषय है।

ख० कवि—मैंने एक नया नख-शिख बनाया है। सुनियेगा ?

कवि—(प्रसन्न होकर) हाँ-हाँ; सुनाइये, सुनाइये !

ख० कवि—सुनिये—

भाल हो अरोरा बोरिएलिस समान और
ध्रुव की निशा सी केशराशि शिर पर हो।
जिसके उरोज मिश्रदेश के पिरामिड हों
बल्ब ऐसे दाँत और रेडियो सा स्वर हो।

ऊँट-ऐसी गति हो, नितम्ब भारी भूधर-से
चीन की दिवार मे ला सी जिस पर हो ॥
आँखें साइकिल सी टोमैटो ऐसे गाल, लाल
गाजर सी नाक लाल मूली सा अधर हो ॥
परम उदार-चित्त इगलैंड-वासियों मे
हिन्द की भलाई के खयाल सी कमर हो।
ऐसी नायिकाओं का निवास भगवान करे
हिन्दी के कवित्त-प्रेमियों के घर घर हो ॥

कवि—(इसमें पुराने कवियों का मजाक़ उड़ाया गया है, यह सोचकर कुछ विरक्त सा होकर) अरोरा बोरिएलिस, ध्रुव, पिरामिड, बल्ब, रेडियो चीन की दीवार, टोमैटो और ये क्या चीजें हैं? ये अप्रयुक्त शब्द हैं। प्राचीन कवियों ने इनका प्रयोग कहीं नहीं किया है। दूसरे यह तो कोई छन्द ही नहीं हुआ। घनाक्षरी में तो चार ही चरण होते हैं, इसमें छः हैं।

स० कवि—आपका शरीर तो बीसवीं सदी में चल रहा है, पर दिमाग़, मालूम होता है, तीन सौ बरस पीछे की दुनिया में है। इस ज़माने में साँस लेते हुये भी आप इन शब्दों को नहीं जानते? आश्चर्य है। 'टमैटो ऐसे गाल', अहा! कैसी मज़ेदार उपमा है। गुलाब ऐसे गाल कहने में वह आनन्द नहीं, जो टोमैटो में है। 'टोमैटो' शीशे की तरह चिकना, प्रभात कालीन सूर्य की तरह लाल, गोल और सुन्दर होता है। अहा! जिस नायिका के ऐसे गाल हों, फिर वह तो विश्व-मोहिनी हो जाय न?

कवि—'टमैटो' का रंग तो मांस-जैसा होता है। देखने में घृणा-सी लगती है।

ख० कवि—तो आपकी नायिका के गाल क्या काठ के हैं ?

कवि—(झेंपकर) लेकिन बिजली के बल्व तो दाँतों से बडे होते हैं।

ख० कवि—और पहाड स्तनों से छोटे होते हैं ? यहाँ बल्व की चमक और उसकी सुन्दर बनावट से अभिप्राय है कि उसकी लम्बाई-चौड़ाई से ?

कवि—अच्छा, तो तुम्हारे इस छन्द में छः पद क्यों हैं ?

ख० कवि—तुम्हारे कवित्त मे चार क्यों होते हैं ?

कवि—यह तो नियम है।

ख० कवि—तो समझ लो, नये नख-शिख के लिये मैंने यह नया छन्द बनाया है।

कवि—एक दोष इसमे और है।

ख० कवि—वह क्या ?

कवि—'सिर पर' और 'जिस पर' शब्दों मे 'पर', 'पर' दो बार आया है। यह पुनरुक्ति दोष है।

ख० क०—खडीबोली की कविता मे ऐसे दोषों की ओर ध्यान नहीं दिया जाता।

कवि—आजकल तो व्रज-भाषा की कविता को कोई पूछता नहीं, बल्कि सुननेवाले हंसी उड़ाते हैं। मैं चाहता हूं कि मैं भी खड़ीबोली मे रचना किया करूं।

ख० कवि—हर्ष की बात है।

कवि—लेकिन मुझे भारत, मज़दूर, किसान, सरकार, खद्दर, हिन्दी, पेड, पहाड, ये विषय पसन्द नहीं हैं।

ख० कवि—तब क्या पसंद है ?

कवि—मुझे छायावादी कवियों के कुछ विषय पसंद हैं।

ख० कवि—तब आप 'सजनी-सम्प्रदाय' के कवि बनना चाहते हैं ?

कवि—'सजनी-सम्प्रदाय' कैसा ?

ख० कवि—छायावादी कवि जितनी कविताएँ लिखते हैं सब 'सजनी' या 'सखी' को सम्बोधन करके लिखते हैं। इसीसे वे 'सजनी-सम्प्रदाय' के कवि कहे जाते हैं।

कवि—(कुछ लजाकर) भई, यह नाम तो कुछ वैसा है।

ख० कवि—कैसा ?

कवि—कुछ लज्जाजनक।

ख० कवि—अजी, इसकी परवा न कीजिये। सिर पर बड़े-बड़े बाल रख लीजिये; बीच में माँग काढ़ लीजिये; साहित्य-रसिकों का माल खाकर आप मोटे हो रहे हैं, ज़रा घुलकर हलके हो लीजिये; आवाज़ में, चाल में, उँगली चलाने में ज़रा स्त्रीत्व का अनुकरण कर लीजिये, फिर खप जाइयेगा।

कवि—पर घुलूँ कैसे ?

ख० कवि—किसीके कल्पित प्रेम में।

कवि—प्रेम से कोई घुल नहीं सकता।

ख० कवि०—तो इश्क कीजिये। सुना है—

शेखजी इश्क में घुले ऐसे।
उड़ गया गोश्त रह गया छिलका॥

कवि—अच्छा, इश्क का अभ्यास करूँगा।

(खड़ीबोली का कवि जाता है)

(एक दूसरे कवि का प्रवेश)

ख० कवि—कहिये, कविजी ! क्या हाल है ?

कवि—मैं तो अब छायावादी कवि हो गया हूँ। पर छोटी-सी मञ्ज़िल, जल्दी ही ख़तम हो गई। अब बेकार बैठा हूँ।

ख० कवि—कुछ सुनाइये।

कवि—सुनिये—

सुनकर मेरा नीरव गान।
उठे नहीं धरती के कान ॥

ख० कवि—(सोचता है) धरती के कान कौन-से ? (प्रकट) और ?

कवि—(प्रसन्न होकर) और सुनिये—

हे सखि! मूक वेदना मेरी।
जैसी भीषण रात अँधेरी ॥
वह अनन्त है, निकलूँ कैसे ?
करता ही रहता हूँ फेरी ॥

ख० कवि— और ?

कवि—(गद्‌गद होकर) और सुनिये—

मेरी हृत्तन्त्री के तार।
टूट गये, मैं हूँ बेकार ॥

बस, यहीं रुक गया हूँ। दिमाग़ का दिवाला निकल गया है। तार ही टूट गये तो बजे क्या ?

ख० कवि—(विषय बदलते हुये) कुछ अशुभ समाचार भी सुनोगे ?

कवि—(घबड़ाकर) क्या ?

ख० कवि—आजकल सरकार और प्रजा में युद्ध छिड़ा है। ज़मींदार सब सरकार की तरफ़ हैं और किसानों और मज़दूरों का दल उन दोनों के विरुद्ध। खड़ीबोली के कवि इसी दल के साथ हैं। खड़ीबोली के कवियों ने ऐसा ज़ोर मारा, ऐसी तुक भिड़ाई कि अब उनकी एक-एक कड़ी गाते गाते सैकड़ों किसान और मज़दूर जेल चले जा रहे हैं; उनके एक-एक छंद के पीछे हज़ारों जान देने को तैयार हो गये हैं। चारोंओर उत्साह और उन्माद फूट निकला है। सरकार ने खड़ीबोली के कवियों को गिरफ़्तार करके जेल में डाल देने की घोषणा की है।

कवि—तो तुम्हारे नाम भी वारंट होगा ?

ख० कवि—होगा ही। मै तो तुम्हे यह समाचार देने आया हूँ। क्योंकि तुम अभी कई सदी पिछडे रहते हो। कहीं धोखे मे न आ जाना।

कवि—इसीसे तो मै इस पचडे मे पडा नही।

ख० कवि—पर इससे भी भयानक विपत्ति तुमपर आनेवाली है।

कवि—(घबड़ाकर) वह क्या ?

ख० कवि—किसानों और मज़दूरों ने अपना संगठन प्रारंभ किया है। जो व्यक्ति उनके दल का नही होता, उसका वे बॉयकाट करते हैं। तुम किधर रहोगे ?

(कवि भयानक चिन्ता मे पड जाता है। इतने मे एक हुल्लड आता है। हुल्लड मे जमींदार का लड़का भी है।)

ख० कवि—लो, तुमको पकडनेवाला दल आ गया।

कवि—(घबड़ाकर, काग़ज़ और कलम फेंककर) मुझे बचाओ।

हुल्लड का एक व्यक्ति—यहाँ एक कवि बैठा करता है। वह ज़मीदारों का पक्षपाती है।

कवि—(खडे होकर) यहाँ कोई कवि नही रहता।

किसान—वाह, तुम्हीं कवि हो न ? बताओ तुम किधर जाओगे ?

कवि—मुझे पकड़ो मत। मैं किसी राजा या ज़मींदार के पास चला जाऊँगा।

ज़मींदार का लड़का—तुमको वहाँ कौन पूछेगा ? तुम्हींने तो उन्हें तबाही का रास्ता दिखलाया है।

कवि—तुम भी क्या इस दल में हो ?

लड़का—मै ज़माने के साथ हूँ।

कवि—तो मुझे भी इसी दल मे लेलो।

कारीगर—तुम क्या काम करोगे ?

कवि—(गिड़गिड़ाकर) मैं तो कविता के सिवा और कोई काम जानता ही नहीं। मुझसे कोई बेगार करा लो।

चमार—पर यह तो तुम्हारा विषय नहीं।

लड़का—अच्छा, इसे ज़मींदारों की ओर जाने दो। ताकि यह उन्हें सर्वनाश की ओर जल्दी घसीट ले जाय।

कवि—(कृतज्ञ होकर) हाँ!

नाई—मैं इसकी हजामत नहीं बनाऊँगा।

धोबी—मैं इसके कपड़े नहीं धोऊँगा।

मोची—मैं इसके जूते नहीं सीऊँगा।

कहार—मैं इसकी सेवा नहीं करूँगा।

मेहतर—मैं इसका पाखाना नहीं उठाऊँगा।

किसान—मैं इसको अन्न नहीं दूँगा।

कवि—क्या मैं ऐसा घृणित हूँ?

सब—हाँ!

(यकायक कवि की प्रतिभा जाग उठती है और साहस का उदय होता है।)

कवि—तो मैं तुम्हारा नेता बनूँगा, तुम्हारी जीभ बनूँगा।

सब—(हर्ष से) तो हम लोग तुम्हारी पूजा करेंगे। चलो, आगे चलो।

खड़ीबोली का कवि—मैं कहता था न कि ज़रा ज़माने पर भी नज़र रक्खा करो।

(प्रस्थान)

※ ※ ※

नख-शिख

साँझ का समय था। दिनभर काम करते-करते थककर विरंचि ने सरस्वती से कहा—आज तो कुछ घूमने-फिरने को जी चाहता है।

सरस्वती ने कहा—चलिये, मुझे भी एक भक्त के पास जाना है। श्रावण का महीना है। भारतवर्ष के वन-उपवन हरियाली से सज उठे हैं। पुष्पित पल्लवित लता-द्रुम को देखकर आपका हृदय प्रफुल्लित हो जायगा।

विमान पर बैठकर दोनों ब्रह्म-लोक से भारतवर्ष की ओर चले। वर्षाकाल में भारत की भूमि अपने अनन्त वैभव की प्रदर्शिनी खोलकर विश्व को चकित कर देती है। चारोंओर घूम-फिरकर विरंचि ने बहुत सुख का अनुभव किया। उन्होंने सरस्वती से कहा—तुम्हारा भक्त कहाँ रहता है? अब उसके पास चलो।

सरस्वती ने कहा—मेरा भक्त गंगा-तट पर, एक निर्जन स्थान में रहता है।

इशारा पाते ही विमान भूमि पर उतरा। दोनों उतर पड़े। पास ही भक्त का स्थान था। सरस्वती का भक्त एक कवि था। कवि अविवाहित था। शहर के कोलाहल से विरक्त होकर, गंगा-तट पर एक सुनसान स्थान में घर बनाकर, वह सरस्वती की आराधना में समय व्यतीत करता था। एक ऊँचे कगार पर अच्छी तरह सजा-सजाया उसका कुटीर था। चारोंओर भिन्न रूप-रंग की

लतायें कुटीर को सुशोभित कर रही थीं । आसपास कई कुंज थे। पुष्पित कदम्ब की सुगंध से समीर उन्मत्त हो रहा था। रसाल के कुंज से कोकिल का आलाप बारबार सुनाई पड़ता था। मधुपों के गुञ्जार से वीणा का सा आनन्द जाग्रत हो रहा था। क्यारियों में खिले हुए फूल मन को मोह लेते थे। वहाँ का दृश्य देखकर विरंचि ने कहा—सरस्वती! तुम्हारा भक्त तो दूसरा विरंचि जान पड़ता है।

कवि श्वेत पत्थर की एक शिला पर बैठकर सूर्यास्त की छटा देख रहा था। विरंचि और सरस्वती उसके निकट पहुँचे। वह आहट पाते ही उठ खड़ा हुआ। उसने उन दोनों का अभिवादन किया और उस लम्बी-चौड़ी शिला पर बैठने का उन्हें आसन दिया।

पर वे बैठे नहीं। सरस्वती ने कहा—ये विरंचि हैं। विश्व का निर्माण ये ही करते हैं। तुम सरस्वती के भक्त हो, सरस्वती की प्रेरणा से ये तुम्हारे पास आये हैं। तुम्हारे मन मे जो कष्ट है, उसे ये दूर कर सकेंगे।

कवि ने हाथ जोड़कर फिर प्रणाम किया और कहा—आप देवता है, तो आप मेरे मन का कष्ट भी जानते ही होंगे। पर अपने कष्ट को एक बार अपने मुख से कहकर हृदय के दुःख को हलका कर लेने का मुझे अवसर दीजिये। मैं एकान्त मे रहता हूँ, मेरा दुःख सुननेवाला कोई नही। दुःख किसी को सुनाने से भी कम होता है।

विरंचि ने कहा—हाँ, कहो, मैं सुनता हूँ। किन्तु ज़रा ज़ोर से कहो। वृद्ध होने के कारण मैं कुछ ऊँचा सुनता हूँ।

कवि ने कहा—हिन्दी-कविता का शौक़ मुझे बचपन ही से है। युवावस्था तक पहुँचते पहुँचते मैंने हिन्दी के प्राय सब

काव्य-ग्रन्थ पढ़ डाले। मुझे स्त्रियों ही के वर्णन पढ़ने को बहुत मिले। मेरे विवाह के लिये घर और बाहर दोनों ओर से बड़ा आग्रह किया जाने लगा। मैंने यह निश्चय किया कि यदि ऐसी स्त्री मुझे मिलेगी, जिसका आकार-प्रकार कवियों के वर्णन से मिलता-जुलता होगा, तभी मैं विवाह करूँगा। ऐसी स्त्री मुझे कहीं न मिली। मैंने सोचा—शायद विरंचि को काव्य का ज्ञान नहीं। इसीसे उन्होंने ऐसी स्त्री की रचना नहीं की। पर पुराने कवियों के समय मे ऐसी स्त्रियाँ थीं ज़रूर, तभी तो उन्होंने उनका वर्णन किया है। जान पड़ता है, अभी थोड़े ही वर्षों से विरंचि ने अपना वह साँचा बन्द कर दिया है। अस्तु; विवाह के लिये जब मै बहुत तंग किया जाने लगा, तब मैं घर छोड़कर बाहर भाग आया और अब यहाँ सुनसान स्थान मे किसी तरह दिन काटता हूँ।

विरंचि ने पूछा—अब तुम्हे स्त्री की आवश्यकता नहीं?

कवि ने कहा—है क्यों नहीं? स्त्री ही तो शक्ति है। उसके बिना पुरुष का जीवन ऊसर की तरह सौन्दर्य-रहित है। जीवन-संग्राम मे लड़ते-लड़ते जब पुरुष थक जाता है, तब स्त्री उसे नवीन उत्साह और नूतन शक्ति से भरकर उसकी कमी पूरी कर देती है, और प्रातःकाल फिर वह जगत् मे भाग्य की परीक्षा करने निकलता है। स्त्री को तो मै पुरुष की शक्ति का स्रोत मानता हूँ। पर मै तो सौन्दर्य का प्रेमी ठहरा। सौन्दर्य ही से मेरी शक्ति विकसित होती है, उसी के विकास के लिये मुझे स्त्री की आवश्यकता है। पर मैं ऐसे नख-शिख की स्त्री चाहता हूँ, जैसा हिन्दी के पुराने कवियों ने लिखा है।

विरंचि ने कहा—मेरे सम्बन्ध मे तुमने ठीक सोच रक्खा है कि मैं कवि नहीं हूँ। और न मुझे दूसरों की कविता पढ़ने का

अवकाश ही मिलता है। अतएव तुम नख-शिख की एक सूची बनाकर दो। मै तुम्हारे लिये वैसी ही स्त्री बना दूँगा।

कवि ने अत्यन्त हर्षित होकर कहा—धन्य है, आप मेरे सौभाग्य ही से यहाँ पधारे है। मैं आजीवन आपका कृतज्ञ रहूँगा। सूची यह लीजिये, मैने पहले ही से तैयार कर रक्खी है।

कवि ने अपने बंडल मे से एक काग़ज़ निकालकर विरंचि के हाथ मे दिया। उसमे स्त्री के नख-शिख की यह सूची थी—

केश—घटा, मरकत के सूत, साँप, अधकार के तार, सेवार, भ्रमर।

वेणी—साँपिनी।

माँग—कज्जल के कूट पर दीप शिखा, श्याम घन-मण्डल मे दामिनी, कसौटी पर कंचन की लीक, अंधकार के हृदय में प्रकाश का वाण, ढाल पर कामदेव की दुधारी तलवार।

अलक—साँपिनी, भ्रमरावली, श्याम-घटा।

मुख—कमल, दर्पण, चंद्र।

ललाट—अर्द्धचंद्र, स्वर्ण की पट्टी।

भृकुटी—लता, धनुष, खड्ग, पताका, पल्लव।

नेत्र—चकोर, मीन, मृग, खंजन, कमल, भ्रमर, काम-शर।

कपोल—दर्पण, गुलाब।

कपोल का तिल—सुधा-सर मे नील-कमल, चंद्र पर सिधु-पक, कमल में अलि, दर्पण पर मोरचा।

शीतला के दाग— दृष्टि गड जाने के चिन्ह।

दाँत—मोती, मणि, कुन्द-कली, अनार के दाने, हीरा।

नासिका—तोता, तिल-प्रसून, किंशुक।

अधर—बिम्बा-फल, मूँगा, लाल फूल।

रसना—षटरस की कसौटी।

मुखवास—चन्दन, चमेली, बकुल, कमल की सुगन्ध।

हास्य—कौमुदी, बिजली, सुधा, प्रकाश, उषा।

स्वर—कोकिल, वीणा।

चिबुक—अधखिली कली।

कान—मन के मंत्री और मित्र, सीप, पुष्प।

ग्रीवा—कपोत, शंख, सुराही।

भुजा—मृणाल, कंचन की डाल।

कर – कमल।

कुच—चकवाक, कमल, कुम्भ, श्रीफल, अनार, हाथी का मस्तक, उलटे नगाड़े, पर्वत, कामदेव का तम्बू, मुनि, नारंगी, काम के खिलौने, यौवन-रत्न के सम्पुट।

पीठ—सोने की पट्टी, सोने के केले का पत्ता।

रोमावली—लता।

त्रिबली—नदी, तरंग।

कटि—सिंह की कटि, ब्रह्म के समान निराकार कटि।

नितम्ब—चक्र, मदन-सरोवर के पुलिन।

जंघा—हाथी का सूँड़, केला।

चरण—कमल, पल्लव।

एँड़ी—विद्रुम, बिम्बा, बधूक, जपा, गुलेलाला, गुलाब।

अँगुली—पद-पद्म रूपी निषंग में कामदेव के शर।

नख—उडुगण, चंद्रमा, हीरा, मोती, पुष्प।

अंग-दीप्ति—सोना, केसर, चम्पा, कमल, चपला।

सम्पूर्ण अंग—कनक-लता, दीप-शिखा, चन्द्र-कला।

विरंचि ने कहा—अच्छा; कल प्रातःकाल तुमको ऐसी स्त्री मिल जायगी। पर एक शर्त है कि आजीवन तुमको उसे अपने पास रखना होगा। सरस्वती के विशेष अनुरोध ही से तुमको ऐसी स्त्री मिल रही है। तुम उसे छोड़ दोगे तो उसके भरण-

पोषण का भार लेनेवाला विश्व में शायद और कोई न मिलेगा।

कवि ने विहँसकर कहा—आप यह क्या कह रहे हैं! मैं तो उसे प्राण की तरह रक्खूँगा। एक पल भी आँखों से ओट न होने दूँगा। आप एक जीवन की बात कहते हैं, मै तो उसे दो चार जीवन तक साथ रहने देने के लिये आपसे प्रार्थना करूँगा।

सरस्वती ने विरंचि के कान मे कहा—आप इसपर दया कीजिये। यह मेरा बड़ा भक्त है। मैंने इसे प्रतिभा प्रदान की है। इसके द्वारा मैं विश्व में विख्यात होने की आशा रखती हूँ। यह कवि है। यह केवल कल्पना करना जानता है। इसे अनुभव नहीं है। आप जीवनभर के लिये इसे मत फँसाइये। अनुभव करके तब फिर कुछ कहने-सुनने का इसे अवसर दीजिये।

विरंचि ने कवि से कहा—अच्छा, एक सप्ताह बाद मैं फिर आऊँगा। उस समय तुम जैसा कहोगे, एक बार फिर उसपर ध्यान दूँगा। एक सप्ताह तक स्त्री को तुम साथ न रक्खोगे तो वही नख-शिख तुम्हारा हो जायगा।

कवि ने भक्ति-पूर्वक प्रणाम किया। विरंचि सरस्वती के साथ विमान पर बैठकर ब्रह्मलोक को चले गये।

विरंचि ने अपने कारखाने मे जाकर कवि की सूची निकाली। सूची में किसी-किसी अंग के लिये कई पदार्थों के नाम लिखे थे। विरंचि ने उनमे से कुछ पदार्थ चुन लिये और उनसे एक स्त्री निर्माण कर दी।

रात बीत गई। उषा का उदय होते ही कवि की निद्रा भङ्ग हुई। प्रभात-कालीन दृश्य देखने और नित्य-कर्म से निवृत्त होने के लिये वह बाहर निकला। सूर्योदय होने पर जब वह अपने सुसज्जित कमरे में वापस आया, तब वह क्या देखता है कि एक स्त्री उसकी पलंग पर लेटी है। कवि ने समझा—विरंचि ने अपनी

प्रतिज्ञा पूरी की है ।

स्त्री लेटी ही रही। लेटं ही लेटं उसने कोकिल-स्वर मे कहा—ऑइ्ये॑ प्रिँयॅतॅम ! प्रॉणे॑श्वॅर ! ऑपॅकॉ विॅयोॅग मैं॑ सॅहॅनॅ नॅही॑ कॅर सॅकॅती॑ ।

कवि ने देखा—स्त्री की अजब मूरत है। सिर पर केश के स्थान पर सेवार है। वेणी के स्थान पर एक साँप-सा लटक रहा है। भौ के स्थान पर दो पत्तियाँ चिपकाई हुई है। आँख के स्थान पर दो मछलियाँ बनी हुई है। नाक के स्थान पर तोते की नाक लगा दी गई है, जिसकी नोक ओंठ को चूम रही है। दोनों कान सीप के है। गाल के स्थान पर दोनों ओर दो गुलाब के फूल खिल रहे है। ओंठ बिम्बा-फल के बने हैं, जो बडे भद्दे जान पडते हैं। दोनों हाथ मृणाल की तरह पतले और लम्बे है। हथेली और अँगुलियों के बदले कमल के फूल लगे है। गले के स्थान पर शङ्ख है। सबसे विचित्र स्तन है, छाती पर दो घडे रक्खे है। कमर का कहीं पता नही। बर्र के अधोभाग की तरह नितम्ब ख़ूब पृथुल हैं। एक टॉग हाथी के सूँड की तरह है, दूसरी केले के खम्भे की तरह। टाँगों के निचले सिरों पर पैर के स्थान पर दो कमल के फूल लगे हैं। कवि ने नाम पूछा तो उत्तर मिला—कॅविॅप्रिॅयाँ ।

कविप्रिया का यह वीभत्स रूप देखकर कवि चकित हो गया। यदि उसे यह भय न होता कि एक सप्ताह तक उसके पास न रहने से वही रूप-रंग उसे मिल जायगा तो वह कभी वैसी स्त्री के पास खड़ा भी न होता।

कवि बडे असमंजस मे पड़ा। इतने मे स्त्री ने कहा—प्रिँयँ-तॅमँ ! मुँझे॑ उॅठॉकॅर बैॅठॉइ्ये॑ ।

कवि ने हाथ का सहारा देकर उसे उठाया। कमर का तो

पता ही न था; पर थी ज़रूर। आँख से दिखाई न पड़ती थी। उठाकर बैठाते ही वह फिर एक बार लुढ़क पड़ी। उसने कहा—प्रॉणँनॉथॅ ! स्तॅनों के भॉरॅ कों यॅहॅ मृॅणॉलॅ के तॉरॅ से भी अॅतिँ क्षीॅणॅ कॅटि सॅंभॉलॅ नॅहीं सॅकॅती।

कवि ने मन ही मन खिझकर कहा—आग लगे ऐसी कटि से। अब छिनभर मैं तुम्हें पकड़कर बैठा रहूँगा ! यह तो अच्छी बला में जान फँसी।

स्त्री ने कहा—प्रिॅयॅतॅमॅ ! मुॅझे छॉती से लॅगॉ लो।

प्रियतम ने हँसकर कहा—क्षमा करो, इन घड़ों के लिये मेरी छाती में जगह नहीं।

तीन-चार दिन तो कवि ने किसी तरह काटे। अब कविप्रिया उसके जीवन पर एक असह्य भार-सी जान पड़ने लगी। उसकी एक टाँग तो हाथी के सूँड़ की तरह कुण्डली बन जाती थी और दूसरी टाँग केले के खंभे की तरह सीधी ही रहती थी, मुड़ती ही न थी। तोते की-सी नाक देखकर कवि को बड़ी घृणा होती थी। उसने मन ही मन अपनी भूल स्वीकार की कि इस प्रकार की स्त्रियों को तो रसिक और राजा लोग पसन्द करते हैं। कोई कवि अपने लिये ऐसी स्त्री कभी पसंद नहीं कर सकता। इसका नाम 'रसिक-प्रिया' होता तो अच्छा था।

कविप्रिया को लेकर कवि की बड़ी दुर्गति हुई। छन्द बनाना और प्रकृति का सौन्दर्य-निरीक्षण वह भूल गया। सरस्वती से अपने भक्त की यह दुर्दशा देखी न गई। उन्होंने विरंचि से कहा—कवि उस स्त्री के साथ बहुत परेशान है। आप चलकर उसे बंधन-मुक्त कीजिये।

विरंचि ने सातवें दिन कवि के आश्रम में पदार्पण किया। उन्हें देखते ही कवि दौड़कर उनके पैरों पर गिर पड़ा और

बोला—हे दयामय ! इस कविप्रिया से मेरा पिंड छुड़ाइये। मुझे चाहे कीट-पतंग का शरीर दीजिये, पर यह बीभत्स रूप मेरे सामने से हटा लीजिये।

विरंचि ने हँसकर कहा—मैंने तो तुम्हारी इच्छा के अनुसार ही यह स्त्री बना दी थी। तुम्हारा हाल सुनकर इस वृद्धावस्था में भी मेरे मन में बड़ा कौतूहल हुआ। मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। अब तुम कैसी स्त्री चाहते हो ? बताओ, मैं वैसी बना दूँगा।

कवि ने कहा—ब्रजभाषा के कवियों ने स्त्री के रूप की सुन्दर कल्पना नहीं की। आजकल खड़ीबोली के कवि जैसी सुन्दरता पसंद करते हैं, उसके अनुसार एक स्त्री रचकर मुझे दीजिये।

विरंचि ने पूछा—खड़ीबोली के कवि कैसी स्त्री पसंद करते हैं ?

कवि ने कहा—जो कवि के स्वप्न के समान सुन्दर हो, विश्व के विस्मय के समान मनोहर हो, उषा के समान मंजुल हो, संगीत के समान रुचिर हो, सदर्थ से प्राणित एक पंक्ति के समान ललित हो, प्रेम के कटाक्ष के समान आकर्षक हो, अनुराग के समान सरस हो, स्नेह के समान सरल हो, दया के समान कोमल हो, सत्य के समान उज्ज्वल हो, शिशु के हास्य की तरह निर्मल हो, धर्म-गीत की तरह पवित्र हो, विनय के समान शील-वती हो, तरंगिणी के समान आनन्दमयी हो, जिसके केश क्रोध के समान काले हों, जिसके नेत्र विरह की पीड़ा के समान उन्मा-दक हों, जिसके अधर प्रेम के समान मधुर हों, जिसके दंत सुधा-बिन्दु के समान शुभ्र हों, जिसके कान आकाश-पुष्प के समान अद्भुत हों, जिसकी कटि साधु के असत्य, श्रृगाल की धृष्टता, दासी के सुख, शूर के भय, दरिद्र के धन, कृपण के दान, मूर्ख के ज्ञान,

प्रणय-कलह और कपट की प्रीति के समान अदृश्य हों, मुझे ऐसी नायिका चाहिये ।

विरंचि ने सिर हिलाकर कहा—मैं ऐसी नायिका नहीं बना सकता ।

कवि ने कहा—तो आप अपनी इस कविप्रिया को ले जाइये ।

विरंचि कविप्रिया को साथ लेकर, विमान पर बैठकर, ब्रह्म-लोक को चले गये ।

कवि उसी समय निर्जन स्थान को छोड़कर घर आया । आते ही उसने कविता के पोथी-पत्रों का बंडल उठाकर टाँड़ पर रख दिया और घोषणा कर दी—मैं विवाह करूँगा । जब विरंचि की सृष्टि में वैसी स्त्री हुई नहीं, जैसी कवि लोग बताते हैं, तब मैं कल्पना के पीछे अपना जीवन क्यों नष्ट करूँ ?

मित्रों को कविप्रिया का हाल सुनाकर उसने कहा—मैं तो दिनभर उसकी कमर के सँभालने ही में परेशान रहता था । कवियों ने कमर को छीलते-छीलते यहाँ तक बारीक कर डाला है कि वह आँख से दिखाई ही नहीं पड़ती । बारबार उसके न होने का सन्देह होता है । मुझे उसकी सूरत देखकर ऐसी घृणा हो गई है कि अब नख-शिख-वर्णन के कवित्त या सवैया सुनकर या पढ़-कर मेरी तबीअत ख़राब हो जाती है ।

नायिका-भेद

कपिल बालकपन में बड़ा चञ्चल था। धीरे-धीरे उसकी चञ्चलता इस सीमा को पहुँच गई कि लोगों को उसे दंड देने की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। सबसे बड़ा दंड, जो उसे दिया गया, वह यह था कि लोगों ने उसके नाम में से लकार छीन लिया। सब लोग उसे 'कपि' कहकर पुकारने लगे।

किशोरावस्था तक पहुँचते पहुँचते कपिल में एक अद्भुत शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ। वह आप से आप, बिना किसीके सिखाये, पद्य रचने लगा।

पाठशाला के अध्यापक ने उसकी प्रतिभा से प्रसन्न होकर उसे छन्द बनाने के कुछ नियम बता दिये। नियमों की सहायता से कपिल पिंगल-सम्मत शुद्ध रचना करने लगा।

उसने हिन्दी के पुराने कवियों की कविताएँ खूब ध्यान से पढ़ीं। उन दिनों शृङ्गार-रस की कविता उसे बहुत प्रिय लगती थी। आँखों में यौवन का उन्माद था, इससे समस्त सृष्टि उसे शृङ्गारमयी दिखाई पड़ती थी। पर वह यह नहीं समझता था कि अपना मन सुन्दर होने के कारण ही जगत् इतना सुन्दर लगता है। जैसे, माता नहीं जानती कि शिशु का हास्य उसके स्नेह ही की छटा है।

कपिल प्रकृति के सौन्दर्य को अपने से भिन्न मानकर उसके निरीक्षण में तन्मय रहने लगा। उसका मन भ्रमर की तरह अतृप्त

होकर नाना विषय-विपिन में दौड़ने लगा। पाठशाला की क्रम-बद्ध शिक्षा में उसे अरुचि हो गई। उसने स्वतंत्र-रूप से साहित्य का अध्ययन करना प्रारम्भ किया।

प्रकृति से प्रेम होने के साथ ही कपिल की चञ्चलता भी गंभीरता में परिणत होती गई। जन-समूह में बैठकर वाक्य-व्यय करने की अपेक्षा उसे किसी उपवन में, किसी खिले हुये फूल के समीप बैठकर उसे सम्बोधन करके कुछ कहने में अधिक मज़ा आने लगा।

मुकुलित कली को देखकर वह उसे प्यार से स्पर्श करता और कहता—अरी कली! तुझे रोज़-रोज़ कौन गुदगुदा जाता है, जो हँसती ही चली आती है!

किसलय को स्पर्श करके वह कहने लगता—ऐसी कोमलता तुम कहाँ से संचय कर रहे हो?

पूर्ण विकसित पुष्प को देखकर वह कहने लगता—किसकी खोज में घर से बाहर निकल आये हो? भीतर देखो, तुम्हारा प्रियतम तुम्हारे भीतर ही है।

इस प्रकार कपिल ने जड़-चेतन का भेद भुला दिया। उसने बहुत सोच-साचकर कविता के लिये अपना उपनाम "पिक" रक्खा। "पिक" उपनाम रखने के कई उद्देश्य थे। एक तो वह 'कपि' का उलटा था, जो उसके लड़कपन की याद दिलाता था। दूसरे, वसंत पंचमी को वह पैदा हुआ था। पिक को वसंत बहुत प्रिय होता है। तीसरे, पिक भारतीय कवियों को बहुत प्रिय है। ऐसा कोई कवि नहीं, जिसने पिक के लिये कुछ न कहा हो। हिन्दी-साहित्य में पिक-जैसा भाग्यवान पक्षी दूसरा नहीं। इससे पिक को पिक के समान ही साहित्य-जगत में प्रसिद्ध होने की प्रबल उत्कंठा हुई।

उसने बहुत से छंद रच डाले। धीरे-धीरे उसके घर का

परिमल फैलने लगा और गाँव में वह कवि कहकर सम्मानित भी किया जाने लगा।

एक दिन उसके जीवन-प्रवाह मे एक नवीन घटना संघटित हुई। उसका विवाह हो गया। विवाह के अवसर पर वह अपनी स्त्री के मुख को अच्छी तरह नहीं देख सका था। पर जिस हाथ को उसने पकड़ा था, वह गौर वर्ण था। विवाह के पश्चात् घर आने पर उसे इतना ही स्मरण था कि उसकी स्त्री गौर-वर्ण की है।

पर एक कवि के लिये किसी स्त्री के सौंदर्य के सम्बन्ध में केवल उसके चमड़े का रंग जानना पर्याप्त नहीं। सुन्दरता की नाक तो नाक है। इसीसे उसे मुख-मण्डल के ठीक बीच में, मुख के ऊपर दोनों कपोलों की सीमा पर, आँखों से भी अच्छा स्थान मिला है।

पिक ने एक दिन सोचा—कहीं उसकी स्त्री की नाक गाजर की फाँक-सी तो नहीं है। कई दिनों तक वह इस शंका के समाधान में लगा रहा। पर धीरे-धीरे वह सब भूल गया और फिर अपने चिर-अभ्यस्त प्रकृति-निरीक्षण में तन्मय हो गया।

विवाह के उपरान्त एक वर्ष भी न बीतने पाया था कि उसके मनोराज्य पर प्रकृति का दूसरा आक्रमण हुआ। उसके पड़ोस में एक अहीर रहता था। अहीर का नाम था, बुद्धू। सब उसे बुधुआ कहा करते थे। बुधुआ बड़ा मूर्ख था। बस, मिट्टी की मूर्ति। काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि किसी विकार से वह व्यथित नहीं था। युवावस्था प्राप्त होने पर उसका भी विवाह हो गया।

विवाह के साथ ही उसकी स्त्री भी ससुराल आगई। उसकी स्त्री बड़ी सुन्दरी थी। लोग कहने लगे—देखो, भाग्य की बात है; बुधुआ को ऐसी लक्ष्मी मिल गई।

स्त्री का नाम था, चम्पा। चम्पा की तरह उसका रंग था।

सुन्दर समुन्नत नासिका, फूल की तरह ठुड्डी, मद-भरे नेत्र, सुरीला स्वर और गोल सुडौल कपोल बडे ही मनोहर थे।

अहीर के घर मे परदे का चलन नही। बुधुआ ने बारबार उस रूप-राशि को आँख भरकर देखा। वह चकित हो गया।

धीरे-धीरे उसमें आप ही आप परिवर्तन होने लगा। एक मेले मे जाकर वह कंघी खरीद लाया। कंघी से दिन में दो-तीन बार वह अपनी लंबी चोटी साफ़ करने लगा। स्कूल या कालिज में तो वह कभी गया नहीं था, इससे उसकी युवावस्था उसके शरीर मे किसी बरहे (फुलवाड़ी मे पानी की नाली) के समीप उगी हुई लता की तरह अपने आप निरन्तर वेग से प्रफुल्लित हो रही थी। उसके अंग-प्रत्यंग से यौवन की छटा फूट रही थी।

चम्पा ने उसे और विकसित कर दिया। बुधुआ मे सबसे आश्चर्य-जनक परिवर्तन जो हुआ, वह यह था कि वह कवि हो गया। वह बडे रसीले बिरहे बनाने और गाने लगा। खेत और बन उसके बिरहों से गूँज उठे।

सौन्दर्य ने संसार मे इतना बडा चमत्कार कर दिखाया। एक बज्र मूर्ख को उसने कवि बना दिया। बुधुआ बुद्धिराज हो गया। पर फूलों और पत्तों मे सौन्दर्य ढूँढनेवाले कपि को इसकी ख़बर ही नहीं।

एक दिन संध्या के समय पिक अपने मकान की छत पर खड़ा-खडा सूर्यास्त के समय का चित्रित आकाश देख रहा था। उसने सुना, कोई अहीर बिरहा गाता हुआ आरहा है। वह कान लगाकर सुनने लगा—

बगिया में फूलै गेदवा गुलववा,
बन टेसुआ रहे छाय।

फूल झरत नित अँगना मे मोरे,
जब हँसि हँसि गोरी बतलाय ॥

बगिया मे बोलै कोइलिया रे,
मोरवा करत बन सोर।

मोरे घर चहकै सोने क चिरैया,
सुनि हुलसै जिय मोर ॥

पिक को बिरहे मे अपने पद्यों से अधिक सरसता जान पडी। निकट आने पर उसने पहचाना—अरे ! यह तो बुधुआ है। इसे ऐसी बुद्धि कहाँ से आ गई ?

पिक अपने आप इस रहस्य को न समझ सका। वह छत से नीचे उतरकर पडोस की एक बैठक मे आ गया। गाँव के बहुत-से लोग वहाँ मन बहला रहे थे।

बातों ही बातों में बुधुआ की चर्चा आ पडी। एक ने कहा—जबसे स्त्री आई है, तबसे बुधुआ का रंग-ढंग ही बदल गया। ऐसा नाचनेवाला और नये बिरहे बनाकर गानेवाला इधर दस-बीस कोस के भीतर तो दूसरा कोई नहीं है।

फिर भी पिक की समझ में यह बात न आई कि स्त्री के आने से बुधुआ मे कवित्व-शक्ति कैसे जाग्रत हो गई।

किसी पत्र-सम्पादक को अपने ऊपर प्रसन्न करना हो तो उसके पत्र को खोलकर, उसीके सामने कुछ देर तक उसके सम्पादकीय लेख पर दृष्टि गडाये रखनी चाहिये। किसी कवि को प्रसन्न करना हो तो उसके निकट उसका रचा हुआ कोई पद्य धीरे-धीरे गुनगुनाना चाहिये। और यदि कवि से कुछ मतलब निकालना हो तो पद्य पढ़ने के अंत मे अपने ही आप 'वाह वा ! क्या अच्छा कहा है !' कह देना चाहिये।

पिक भी तो कवि के नाम से प्रसिद्ध था। एक बैठक-बाज़ ने कहा—पिक कवि ने आजकल कोई नई कविता लिखी कि नहीं? आपकी कविता बड़ी मज़ेदार होती है।

पिक ने बड़ा सुयोग समझा कि गाँव के बहुत से उपस्थित लोग एक साथ ही उसकी कविता सुन लेंगे। उसने कहा—हाँ, महँगी पर एक छन्द मैंने लिखा है। सुनिये—

पेट खलाये दाँत निकारे लोग फिरें मारे मारे।
महँगी के मारे व्याकुल हैं भारतवासी वेचारे॥

इतने में बुधुआ भी वहीं आ पहुँचा। बैठक के मालिक ने कहा—बुधुआ! तूने भी कुछ बनाया है? सुना तो सही।

बुधुआ ने कहा—सरकार! मैं मूरुख मनई, बनवै का जानौं।

बैठक के एक अन्य व्यक्ति ने कहा—बुधुआ की बुद्धि बड़ी तेज़ है। न बनाये होगा तो अभी बना देगा।

बारबार अपनी प्रशंसा सुनकर बुधुआ ने भी महँगी पर एक बिरहा उसी समय रचकर सुना दिया—

महँगी के मारे बिरहा बिसरिगा,
भूलि गई कजरी कबीर।
देखि के गोरिया क उभरा जोबन,
अब उठै न करेजवा मँ पीर॥

बुधुआ ने दोनों कानों मे उँगलियाँ डालकर ऐसे ठाट से बिरहा गाया कि सब वाह-वाह करने लगे। उस दिन बुधुआ ने पिक को परास्त कर दिया।

एक दिन चम्पा पिक के घर दही देने आई। पिक ने उसे देखा और घरवालों से सुना कि यह बुधुआ की स्त्री है। उस दिन उसने समझा कि इसके सौन्दर्य से प्रभावित होकर ही बुधुआ की

प्रतिभा फूट निकली है। पिक ने यह मान लिया कि स्त्री ही के कारण बुधुआ की बुद्धि प्रखर हो गई है। मेरी स्त्री आयेगी तो मेरी बुद्धि में भी स्फूर्ति आ जायगी।

इस घटना से—प्रकृति के इस अमोघ आक्रमण से—पिक परास्त हो गया। अब वह रात-दिन अपनी स्त्री ही का ध्यान करने लगा।

हिन्दी-कवियों के नख-शिख-वर्णनों को पढ़कर अपनी स्त्री के अङ्गों की कल्पना ही में उसके दिन बीतने लगे। अब वह उपवन में फूलों को देखने नहीं, बल्कि अपनी प्रियतमा के अङ्गों की कल्पना का चित्र देखने जाता था।

पिक ने निश्चय कर लिया कि चम्पा के सौन्दर्य के कारण जब बुधुआ ऐसा मूर्ख व्यक्ति कवि हो गया तो मैं तो स्त्री के आते ही अपने समय में सर्वश्रेष्ठ कवि हो जाऊँगा।

सुन्दर कल्पना में समय बड़े सुख से कट जाता है। जिसके हृदय में किसी के विरह की वेदना नहीं, उसका जीवन व्यर्थ है। पिक ने मानव-जीवन का रहस्य अब समझा।

स्त्री का अभी दर्शन नहीं, कान से उसका कोकिल-स्वर अभी सुना नहीं, हाथ से अभी उसके कमल-कोमल-कान्त शरीर का स्पर्श किया नहीं, अभी केवल उसके ध्यान ही से मानस-जगत् में एक अनिर्वचनीय सौन्दर्य की सृष्टि देखकर पिक को अपार कौतूहल हुआ। अब वह उपवन का विचरना छोड़कर मानस-संसार में विहार करने लगा।

वियोग-व्यथा से एक दिन पिक को निवृत्ति मिल गई। उसकी स्त्री सरस्वती आ गई। वह बड़ी सीधी-सादी और भोली-भाली थी। सरस्वती की तरह वाचाल नहीं थी।

उसके पिता पुराने ढङ्ग के कट्टर हिन्दू थे। स्त्री-शिक्षा के पूर्ण विरोधी और परदा के पूरे पक्षपाती। उन्होंने सरस्वती को

पढ़ाया-लिखाया तो विशेष नहीं, पर ज़बानी धार्मिक शिक्षा ख़ूब दी थी। अपनी तरफ़ से उन्होंने सरस्वती को सती सावित्री के समकक्ष बनाकर ही छोड़ा था।

प्रथम दर्शन में रूप-रसिक पिक ने गुण से पहले सरस्वती के रूप का निरीक्षण आरम्भ किया। सरस्वती का गौर-वर्ण, समुन्नत नोकदार नासिका, विशाल नेत्र, दर्पण के समान सुचिक्कण कपोल और प्रत्येक अङ्ग में यौवन-श्री का विकास देखकर वह आनन्द-मग्न होना ही चाहता था कि उसे उसके मुख-मण्डल पर शीतला के कुछ दाग़ दिखाई पड़े।

उसका उफनता हुआ सुख सोडावाटर के झाग की तरह यकायक शिथिल पड़ने लगा।

दुःखित चित्त से वह अपनी बैठक में आकर कविता की पुस्तकों से मन बहलाने लगा।

सरस्वती के भाग्य की परीक्षा का अवसर था। पिक उससे प्रेम करे या घृणा। शीतला के दाग़ कहते थे—वह कुरूपा है, प्रेम के योग्य नहीं।

दाग़ के विरुद्ध कोई तर्क न होने से निर्णय घृणा ही के पक्ष मे मिलनेवाला था, इतने में सरस्वती के सौभाग्य का पृष्ठ उलट गया और पिक के स्मृति-नगर की एक पगडंडी पर शिवनाथ कवि सरस्वती का पक्ष-सा लेते हुए यह कहते दिखाई पड़े—

चंद की मरीचिकान तोरि बिथराय दीन्ह्यों,
कैधों हीरा फोरि कै कनूका धरि धरि गये।
कैधों काम मंदिर की झाँझरी बनाई विधि,
कैधों सोनजुही के पुहुप झरि झरि गये॥
कामिनि मनोरथ के आलवाल सिवनाथ,
मैन के मतंग माते बेलि चरि चरि गये।

अमल कपोलन पै दाग नहि सीतला के,
डीठि गड़ि गड़ि गईं दाग परि परि गये ॥

शिवनाथ की इस घनाक्षरी ने घृणा को परास्त कर प्रेम को विजय दिला दी। पिक ने कहा—मेरी प्राणेश्वरी के मुख-मण्डल पर शीतला के दाग़ नहीं हैं, बल्कि जितने व्यक्तियों ने दृष्टि गडाकर उसके रूप-लावण्य की परीक्षा की है, उन्हींके ये प्रमाण-चिन्ह और पदक है।

इस प्रकार एक बला टली। पिक ने नायिका-भेद के ग्रन्थों को उलटना-पलटना प्रारम्भ किया। वह यह सोचने लगा कि अब तो मुझे अनुकूल, दक्षिण, शठ और धृष्ट, इन चार प्रकार के नायका मे से कोई एक नायक बनना पड़ेगा। उसने यह निश्चय कियों कि सदा एक-पत्नीव्रत अनुकूल नायक रहकर, झूठ की सहायता से, चारों प्रकार के रसों का आस्वादन करूँगा।

स्त्री के लिये उसने सोचा—कवि की स्त्री को तो स्वकीया ही के सब लक्षणों से अलंकृत होना चाहिये। सामान्या या परकीया तो वह हो ही नहीं सकती। उसने रस-ग्रन्थों से स्वकीया के सम्बन्ध की नीचे लिखी एक तालिका तैयार की—

स्वकीया नायिका

ऊढ़ा—विवाहिता, पतिव्रता।

अनूढा—अविवाहिता, पर भावी पति से प्रेम-भाव रखनेवाली।

अवस्था-भेद से

मुग्धा—शैशव और यौवन के सन्धि-कालवाली।

मुग्धा के तीन भेद—साधारण मुग्धा, अज्ञात-यौवना, ज्ञात-यौवना।

मध्या—पूर्ण विकसित-यौवना, लज्जा-संकोच-संयुक्ता।

प्रौढा—लज्जा-संकोच-रहिता, पति-परायणा।

स्वाधीनपतिका—पति को वश मे रखनेवाली ।

रूप-गर्विता—अपने रूप का गर्व रखनेवाली ।

प्रेम-गर्विता—अपने ऊपर पति के प्रेम का गर्व रखनेवाली ।

गुण-गर्विता—अपने गुण का गर्व करनेवाली ।

वासकसज्जा—सेज और शृङ्गार सजकर पति की राह देखनेवाली ।

आगतपतिका वासकसज्जा—परदेश से पति का आगमन सुनकर साज सजनेवाली ।

अभिसारिका—किसी संकेत-स्थान पर पति से मिलनेवाली ।

विरहिणी

उत्कंठिता—प्रियतम की प्रतीक्षा में उत्कंठिता और देर होने के कारणों का अनुमान करनेवाली ।

खंडिता—किसी दूसरी स्त्री के पास रात बिताकर आनेवाले पति पर अपना क्रोध प्रकट करनेवाली ।

खंडिता के भेद—धीरा, अधीरा, धीराधीरा, प्रौढ़ाधीरा, मानिनी ।

कलहांतरिता—पहले मान करके फिर पछताकर पति को मनानेवाली ।

उत्तमा—मान न करनेवाली ।

मध्यमा—थोड़ा मान करनेवाली ।

अधमा—बिना अपराध ही बड़ा मान करनेवाली ।

विप्रलब्धा—केलि-मन्दिर में जाकर पति की अनुपस्थिति से खिन्न होनेवाली ।

प्रोषितभर्तृका—जिसका पति आने की अवधि बताकर परदेश गया हो ।

गच्छत्पतिका—जिसका पति चलने को तैयार हो ।

प्रोषितपतिका—जिसका पति परदेश चला गया हो ।

आगच्छत्पतिका—पति के आने का समाचार पानेवाली ।

गमिष्यत्पतिका —जिसका पति कुछ दिनों में परदेश जानेवाला हो।
आगमिष्यत्पतिका— जिसका पति परदेश से कुछ दिनों में आनेवाला हो।
आगतपतिका— जिसका पति परदेश से आ गया हो।

वय के अनुसार नाम-भेद

रस-ग्रन्थों में स्त्री की सात वर्ष तक कन्या, साढे बारह तक गौरी, तेईस तक तरुणी और तदुपरान्त चालीस वर्ष तक प्रौढ़ा संज्ञा है।

फिर साढे बारह वर्ष तक वह गौरी की तरह सत्कार-योग्य है; तेईस तक लक्ष्मी की तरह भोग्या है और पैंतीस तक सरस्वती की तरह सुबुद्धि और सम्मतिदात्री है।

लक्ष्मी-संज्ञा प्राप्त होने पर स्त्री तीन महीने तक अंकुरित-यौवना, चौदहवें वर्ष तक नववधू, तदुपरान्त नव-यौवना, पंद्रहवें में अनङ्गवती, सोलहवें में सलज्जा, उन्नीसवें में प्रगल्भ वचना, बीसवें में सुरति-विचित्रा, बाईसवें में रति-कोविदा, तेईसवें में वल्लभा और पचीसवें में रमणी कहलाती है।

पिक ने सब लक्षण मिलाकर देखे तो सरस्वती अनङ्गवती की श्रेणी में पाई गई।

अनङ्गवती सरस्वती को आये कई दिन हो गये। पिक ने उससे अच्छा परिचय कर लिया। पर वह यह निश्चय न कर सका कि यह कौन-सी नायिका है। सामान्या तो वह हो नहीं सकती, क्योंकि कवि की स्त्री ठहरी। परकीया होने का संदेह करना व्यर्थ विषाद में पड़ना था। स्वकीया ही के भेद-उपभेद में से कोई न कोई होना चाहिये। पिक ने परीक्षा लेनी प्रारम्भ की।

एक दिन पिक ने सरस्वती से कहा—आज मैं शयनागार में रात को दस बजे आऊँगा।

दस बजे, ग्यारह बजे, 'बारह बजे, पिक नहीं आया। सरस्वती घर के कामकाज से छुट्टी पाकर, खा-पीकर, शयनागार में गई और सो गई। रात में दो बजे पिक शयनागार के किवाड़ के पास गया और कान लगाकर सुनने लगा। उसे आशा थी कि सरस्वती विप्रलब्धा नायिका की तरह मेरी अनुपस्थिति से खिन्न होकर देव या पदमाकर का कोई छन्द पढ़ती होगी। पर जब भीतर से उसे सरस्वती की प्रगाढ़ निद्रा के प्रमाण-स्वरूप उसकी नाक का गर्जन सुन पड़ा, तब वह कुंठित सा होकर लौट गया और बाहर ही सो रहा।

दूसरे दिन पिक ने सरस्वती से कहा—मैं विदेश जाऊँगा।

सरस्वती चुप रही। पिक बहुत देर तक उसका मुँह देखता रहा। पर वह एक वाक्य भी ऐसा न बोली, जिससे उसका प्रेम प्रकट होता और पिक का कवि हृदय आनन्द-विभोर होता।

इससे अब पिक सरस्वती से कुछ विरक्त-सा रहने लगा। उसे यहाँ तक घृणा हो गई कि उसने सरस्वती के पास बैठना-उठना भी कम कर दिया।

वह चाहता था कि कवि की स्त्री को भाषण-कला मे पूर्ण दक्ष होना चाहिये। जिस समय पिक ने कहा था कि मैं विदेश जाऊँगा, उस समय सरस्वती की आँखों मे आँसू छलछला आना नितांत आवश्यक था। और उसे कलेजा थामकर यह कहते हुए बैठ जाना चाहिये था, कि हाय! आपसे बिछुड़ने का नाम सुनते ही मेरे प्राण निकले जा रहे हैं। सरस्वती को प्रेम प्रकट करने की कला मालूम ही नहीं थी।

एक दिन पिक के गाँव में कोई साधु महात्मा आये! लोग उनके दर्शनों को गये। पिक भी गया। एकान्त पाकर पिक ने अपने मन की सब व्यथा कह सुनाई और अन्त में कहा—

महाराज ! मै संन्यास लेनेवाला हूँ। संसार मे मेरा जी नहीं लगता। गृह-सुख से वंचित पुरुष के लिये वन ही उपयुक्त स्थान है।

साधु ने कहा—बेटा ! एक बार और विचार कर लो।

यह कहकर उन्होंने पिक के नेत्रों से नेत्र मिलाकर उसके सिर पर हाथ रख दिया। पिक को मूर्च्छा आ गई। मूर्च्छित अवस्था मे वह स्वप्न देखने लगा।

स्वप्न मे उसे यह जान पड़ने लगा कि वह एक नगर मे एक उच्च कुल मे उत्पन्न हुआ है। उसे एक अनुपम सुन्दरी, काम-कला-प्रवीणा और कवि स्त्री मिली है। स्त्री का नाम है, मंजरी। मंजरी के साथ पिक का जीवन बडे सुख से कट रहा है।

दोनों ऐसे एक-मन एक-प्राण हो रहे हैं कि—

दुहूँ मुखचद ओर चितवै चकोर दोऊ,
चितै चितै चौगुनो चितैबो ललचात हैं।
हाँसनि हँसत बिन हाँसी बिहँसत,
मिले गातनि सों गात बात बातनि मे बात हैं॥
प्यारे तन प्यारी पेखि पेखि प्यारी पिय तन,
पियत न खात नेकहूँ न अनखात हैं।
देखि ना थकत देखि देखि ना सकत 'देव'
देखिबे की घात देखि देखि न अघात हैं॥

एक दिन पिक ने अपनी स्त्री की अंग-शोभा का इस प्रकार वर्णन किया—

नेकु हँसी सों भई नखतावली,
मालती कुन्द जुहीन पै दाया।

बैन कहे ते भई वे सुधा,
गति सो भई हसन की सुचि काया ॥
जोति से भूषन पोत से लागत,
यों 'पिक' देव रची यह माया ।
चद भयो मुख को प्रतिबिम्ब,
उदै भई चाँदनो अग की छाया ॥

एक दिन पिक ने पूछा—प्रिये ! मै तुझे किस प्रकार सुख दे सकता हूँ ?

मंजरी ने तत्काल कहा—

जामैं सुख पावौ तुम, सोई हम करै नाथ
हम तौ तिहारे सुख पाये सुख पावतीं ।

पिक ने मन ही मन मंजरी के पातिव्रत धर्म की बडी प्रशंसा की ।

एक दिन मंजरी ने पूछा—तुम मुझे कितना चाहते हो ?

पिक ने कहा—

तो बिन जीबो न जीबो प्रिया
मोहि तेरेई नैन-सरोजन की सौ ॥

यह सुनकर मंजरी फूली न समाई ।

एक दिन पिक ने कहा—मै एक बार विदेश जाना चाहता हूँ ।

मजरी यह सुनते ही पलंग पर गिरकर अर्द्ध-मूर्च्छित-सी हो गई । पिक चकित और भयभीत हो गया । उसने मंजरी के मुख और नेत्रों पर गुलाब-जल के छींटे दिये, तब कही आधे घण्टे के बाद उसकी मूर्च्छा गई । उसने कहा—प्रियतम ! मै वियोग का एक शब्द भी नही सुन सकती । आज मेरे प्राण निकल ही गये

थे। न जाने कैसे रुक गये। अब कभी आप परदेश जाने की बात न चलाइयेगा।

मंजरी के चित्त पर उस दिन की बात का इतना गहरा असर हुआ कि उसने दिनभर कुछ आहार न किया। एक प्रकार से वह रूठी ही रही। पिक सारे दिन उसे मनाने ही में व्यस्त रहा।

मञ्जरी का अतुलनीय प्रेम देखकर पिक गद्‌गद्‌ हो गया। इसी प्रकार कुछ दिन बड़े सुख से बीते। एक दिन तीसरे पहर पिक उपवन में टहल रहा था। मञ्जरी अपने शयनागार में पलङ्ग पर लेटी थी। वह किसी के ध्यान में ऐसी मग्न थी कि थोड़ी देर बाद जब पिक उस घर मे आया, तब भी वह ध्यान-निद्रा ही में पड़ी रही। पिक ने देखा—एक चित्र को वह छाती पर रक्खे और हाथ से दबाये हुये पड़ी है। पिक ने समझा—यह मेरा चित्र होगा। उसने मंजरी को पुकारा। मंजरी चौंककर उठ बैठी, और चित्र को छिपाने का प्रयत्न करने लगी। पिक ने पूछा—देखूँ, तुम्हारे हाथ में किसका चित्र है?

मंजरी बहाना करने लगी। वह पिक के गले से लिपटकर कहने लगी—प्यारे! अबतक तुम कहाँ थे? मैं तुमको ध्यान में देखते-देखते सो गई थी।

इतने मे मौक़ा पाकर पिक ने उसके हाथ से चित्र खींच लिया। चित्र एक अन्य पुरुष का था। उसके नीचे यह दोहा भी लिखा था—

प्यारे! तेरे दरस को, नैन रहे अकुलाय।
उर नव नेह भरयो रहै, कैसे तपनि बुझाय॥

चित्र देखकर और दोहा पढ़कर पिक तो हक्का-बक्का-सा रह गया। उसके हृदय में बड़ी ही वेदना होने लगी। वह उस

मर्मान्तक पीड़ा को न सह सका। वह कहने लगा—स्त्री-जाति ऐसी मायाविनी है ? क्या संसार में किसी का विश्वास किया ही नहीं जा सकता ?

मनुष्य-जीवन से विरक्त होकर, दीवार से लटकी हुई कटार लेकर, वह आत्म-हत्या करना ही चाहता था कि इतने में साधु ने उसके सिर पर अपना हाथ फेर दिया। पिक की मूर्च्छा भङ्ग हुई। वह आँख मलता हुआ उठ बैठा।

साधु ने कहा—बेटा ! बहुत देर हुई, अब घर जाओ। तुम्हारे मन का कष्ट मैं समझ गया। तुम्हारी स्त्री के हृदय में कविता की सामग्री बहुत है। वह शिक्षिता नहीं है, इसीसे अपने मनोगत भावों को वह व्यक्त नहीं कर सकती। वह अपने हृदय का द्वार आप से आप नहीं खोलना जानती तो तुम प्रयत्न करके उसे खोलो और देखो, उसमें तुमको संसार में आजीवन फँसा रखने की बहुत-सी सामग्री है। मस्तिष्क और हृदय दो भिन्न पदार्थ हैं। मस्तिष्क शिक्षित होने पर हृदय के विषय में झूठ बोल सकता है, पर हृदय कभी झूठ नहीं बोलता। हृदय मुख के द्वारा नहीं बोलता, वह नेत्रों से बोलता है। उसकी भाषा में ध्वनि नहीं है, केवल चित्र है। नेत्रों-द्वारा ही हृदय से बातचीत की जा सकती है। बिहारी ने भी इसे स्वीकार किया है—

झूठे जानि न सग्रहे , मन मुँह निकसे बैन।
याही ते मानो किये , बातन को विधि नैन॥

एक उर्दू कवि की भी साक्षी लो—

आँखे तो खोलो देखूँ कहाँ दिल है तुम्हारा।

नायिका-भेद के ग्रन्थों को बाँधकर अलग रख दो। क्योंकि

इनमें बातों के द्वारा नायिका के हृदय का रहस्य जानने का प्रयत्न किया गया है, जो सम्भव नहीं। शिक्षित मस्तिष्क प्रेम के विषय में बहुत धोखा दे सकता है। अतएव प्रेम के सम्बन्ध में मस्तिष्क की बातों के फेर में न पड़ो।

बुधुआ में स्त्री के अनुपम लावण्य के प्रभाव से जो कवित्व जाग्रत हुआ है, उसे देखकर स्तम्भित मत हो। प्रत्येक जाति की आदिम अवस्था में ऐसा ही हुआ था। विचित्र संसार को देखकर पहले-पहल जब मनुष्य के हृदय में कौतूहल उत्पन्न हुआ, तब वह कविता ही के रूप में फूट निकला था। पहले बहिर्जगत् के सौन्दर्य पर बड़ी ललित कविताएँ हुई हैं। जैसे-जैसे सभ्यता का विकास बढ़ता गया, वैसे-वैसे कविता बाहर से सिमटकर अन्तर्जगत् में लीन होती गई। वाल्मीकि ने बहिर्जगत् का बहुत ही मनोहर वर्णन किया है। उनके बाद के कवि व्यास, भास और कालिदास ने अन्तर्जगत् का। समाज की पूर्ण विकसित अवस्था में अन्तर्जगत् का वर्णन अनेक कवियों के मुख से होते-होते वह जूठा और फीका हो जाता है। उसमें नवीनता और ताज़गी नहीं रह जाती। इसी से यह समझा जाता है कि सभ्यता के विकास के साथ कविता का ह्रास होने लगता है। बुधुआ का मन विकसित नहीं हुआ था, इसीसे वह बहिर्जगत् का सौन्दर्य देखकर यकायक जाग्रत हो उठा। तुम्हारा मन विकसित हो चुका है, इससे तुम्हें मूक सौन्दर्य अच्छा नहीं लगता। नेत्रों से रूप देखकर तुम तृप्त नहीं हो सकते। तुम कान से भी कुछ सुनकर सौन्दर्य का अनुभव करना चाहते हो। बुधुआ से तुम अपनी तुलना न करके मूक सौन्दर्य ही को वाचाल बनाने का प्रयत्न करो तो तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी। अब एक बार तुम घर हो आओ। फिर संन्यास लेना चाहोगे तो मैं दीक्षा दे दूँगा।

पिक मञ्जरी के छल और साधु के उपदेश को स्मरण करता हुआ घर आया। सचमुच नायिका-भेद के ग्रन्थों को बाँधकर उसने ताक पर रख दिया। वह यह देखने के लिये कि सरस्वती क्या कर रही है, दबे पैरों घर मे गया। सरस्वती की कोठरी के किवाड़े लगे हुये थे। उन्हें धीरे से खोलकर वह भीतर चला गया।

कोठरी के भीतर एक कोने मे गौरी और गणेश की मूर्ति बनाकर सरस्वती उनकी पूजा कर चुकी थी। पास ही पिक का भी चित्र उसने रख लिया था। वह पृथ्वी पर मस्तक रखकर यह प्रार्थना कर रही थी—हे गौरी माता! हे गणेशजी! उनकी बुद्धि ऐसी कर दो कि वे विदेश न जायँ और मुझपर सदा प्रसन्न रहें।

पिक सरस्वती के पीछे खड़ा यह सुन रहा था। मारे आनन्द के उसके रोम-रोम प्रफुल्लित हो उठे। उसने आगे जाकर कहा—एवमस्तु, तुम्हारी दोनों मनोकामनाएँ पूरी हो गईं।

सरस्वती ने चौंककर सिर उठाया। सामने पिक को देखकर, लजाकर, उसने सिर की साड़ी माथे पर सरका ली। पिक ने उसके गले में हाथ डालकर मुँह चूम लिया और कहा—यहाँ एकान्त में बैठकर वशीकरण मंत्र जपती हो, पर मुँह से एक शब्द बोला नहीं जाता कि विदेश मत जाओ।

सरस्वती ने कहा—मैं बोलना क्या जानूँ? मैं पढ़ी-लिखी तो हूँ नही। न आपकी बातें समझ सकती हूँ, न उत्तर दे सकती हूँ।

पिक ने मन मे कहा—तुम पढ़ी-लिखी नहीं हो, यह कुछ बुरा नहीं है। पढ़-लिखकर मञ्जरी की तरह होकर, तुम संसार को नरक तो नहीं बना रही हो। सच्चरित्रता ही शिक्षा का स्वरूप है।

शिक्षिता पर दुश्चरित्रा नारी से अशिक्षिता और सच्चरित्रा रमणी सर्वथा श्रेष्ठ है।

फिर उसने सरस्वती से कहा—अच्छा, अब मैं तुमसे आँखों से बातें किया करूँगा। आँखों से बात करने की विद्या में तो तुम प्रवीण हो न?

सरस्वती ने लजाकर एक कटाक्ष किया और सिर नीचा कर लिया।

पिक ने मुसकुराते हुये कहा—तुम मुझे जगज्जाल में फँसा रखने का मंत्र जपो, मैं बाहर जाता हूँ।

पिक बाहर चला आया। उसने यह निश्चय किया कि अब खड़ीबोली में कविता किया करूँगा। पुरानी बोली की कविता आज से छोड़ता हूँ। उससे बड़े-बड़े उत्पात हो सकते हैं।

उसी समय खड़ीबोली के प्रसिद्ध कवि पंडित लीलाधर 'ललित' कवि दूर ही से 'पिकजी महरा—ज' पुकारते हुये आ पहुँचे।

पिक ने कहा—आइये, आइये; आज से मैं भी खड़ीबोली में लिखा करूँगा।

ललित कवि ने कहा—खड़ीबोली का अहोभाग्य!

पिक ने पूछा—यह तो बताइए कि खड़ीबोली इसका नाम क्यों पड़ा?

ललित कवि ने कहा—बात यह है कि खड़ीबोली की कविता में जितने काम हैं, सब खड़े ही खड़े करने के हैं। जैसे उठो, दौड़ो, चलो, मारो, तोड़ो, फोड़ो, उन्नति-गिरि पर चढ़ो, आगे बढ़ो इत्यादि। न इसमें विरह है, न शृङ्गार; न हास्य है, न करुणा; न शान्त है, न अद्‌भुत रस। वीर, भयानक, रौद्र और वीभत्स इन्हीं चार रसों का आधिपत्य है। फिर बैठने या लेटने की कहाँ गुञ्जाइश है? इसमें सब खड़ी-खड़ी बातों का वर्णन होता है,

इसी से इसका नाम खड़ीबोली पड़ गया। इसमे नायिका-भेद और नख-शिख की आवश्यकता ही नही पड़ती।

पिक ने पूछा—क्यों?

ललित कवि ने कहा—नायिकायें अब नायकों के से अधिकार चाहती हैं। नायिकायें रात मे दो-दो बजे तक सभाओं मे सम्मिलित रहा करती है। बासकसज्जा और विप्रलब्धा बनने का किसी को मौका ही कहाँ मिलता है? रही नख-शिख की बात, सो पुराने नख-शिख-वर्णन की आवश्यकता तो इसलिये नहीं रही कि अब वह नख-शिख ही नही रहा। चश्मों के कारण कटाक्ष का तो अब बिल्कुल ही लोप हो गया। चश्मावाली को तो अब पङ्कज-लोचनी, कुरंग-नयनी और मीनाक्षी कहने के बदले 'साइकिल-नेत्रा' कहना अधिक उपयुक्त होगा। गज-गामिनी तो अब कहीं दिखाई ही नही पड़तीं। ऊँची एँड़ी के बूटों की बदौलत अब हरिण-गामिनी या उष्ट्र-गामिनी ही अधिक दिखाई पड़ती हैं। हरवक्त मोजों के अन्दर छिपी हुई अँगुलियों की दुर्गंध कविता का नवीन विषय है। अब पद-पद्म कहने को जी नहीं चाहता। कोकिल-कण्ठी को अब मार्जार या मयूर-कंठी कहना ही अधिक सार्थक होगा। इन्हीं सब बातों से विचलित होकर खड़ीबोली के कवियों ने नायिका-भेद और नख-शिख-वर्णन का बहिष्कार कर दिया है। और सच्ची बात यह है कि अब वे ख़ुद नायिकाओं का सा रूप बनाने लगे हैं। अब अपना ही नख-शिख वे क्या लिखें? नायिकायें अब उनका नख-शिख लिखेंगी, तब मज़ा आयेगा।

पिक ने कहा—इसमे तो बड़ी-बड़ी सुविधाएँ है।

ललित कवि ने कहा—जी हाँ, रस, अलङ्कार, नायिका-भेद और नख-शिख सबसे पिंड छूट जायगा। प्रस्तार, मेरु, नष्ट,

उद्दिष्ट, मर्कटी और पताका की भी कद्राहत न रहेगी। चाहोगे तो तुक भी न मिलाना पड़ेगा।

पिक ने गंभीर होकर कहा—अच्छा हुआ, खड़ीबोली में नायिका-भेद नहीं है। अब तो खड़ीबोली में स्त्रियाँ भी कवि होने लगी हैं। कहीं वे नायिका-भेद जान लेतीं तो अपने-अपने पतियों को खूब उल्लू बनाया करतीं।

ललित कवि ने समर्थन करते हुये कहा—इसमें क्या शक ?

पिक ने प्रसन्न होकर पूछा—देश-भक्ति की कविता लिखूँ कि छायावाद की ?

ललित कवि ने कुछ मुँह बनाकर कहा—देशभक्ति की कविता मे क्या रक्खा है ? दुनिया-भर की बुराइयों और कमज़ोरियों की एक लम्बी सूची हिन्दुस्तान के गले में लटका देना, यही रोड़-रोवन उसमे है। सुखी लोग उसे पसंद नहीं करते। छायावाद की कविता कीजिये। उसमे सबसे बड़ा लाभ तो यह है कि चाहे किसी की समझ मे आये, चाहे न आये, सुननेवाले उसकी तारीफ़ ही करते हैं। उनको यह भय रहता है कि तारीफ़ न करेंगे तो वे मूर्ख समझे जायँगे। कैसा मजा है !

पिक ने फिर जिज्ञासा की—पर लिखूँ क्या ?

ललित कवि ने कहा—जो किसी की समझ मे न आवे। अमरकोश खोलकर रसीले शब्दों को चुन-चुनकर जमा कर लीजिये और फिर उन्हे स्वर के तागे मे मनमाने तौर पर पिरो डालिये; और मौके पर गाकर सुनाइये भी। फिर देखिये, कालेज और युनिवर्सिटी के रस-भरे नौजवान किलकारी मारने लगते हैं कि नहीं।

कवियों की कौंसिल

एक बार अखिल भारतवर्षीय कवि-सम्मेलन ने यह निश्चय किया कि देश-प्रबन्ध में विचार का सब काम कवियों के सुपुर्द होना चाहिये। क्योंकि कवि सरस्वती के लाडले पुत्र हैं। इनसे बढ़कर कोई दूसरा विद्वान् नहीं हो सकता।

इस निश्चय को लेकर संयुक्त-प्रांत के प्रत्येक ज़िले में कवियों ने अपनी मनोहर कवितायें सुना-सुनाकर जनता पर वह रङ्ग जमाया कि कांग्रेस के नेता मुँह ताकते ही रह गये और वोटरों ने मन्त्र-मुग्ध की तरह कवियों को कौंसिल के लिये मेम्बर चुन लिया।

जनता कवियों के हाव-भाव, नायिका-भेद तथा नख-शिख आदि के वर्णनों और सब ऋतुओं के अलग-अलग नुसख़ों पर ऐसी रीझ गई थी कि वह किसीके समझाने पर भी न समझ सकी कि कवियों का काम कौंसिल में नहीं है।

कवि-सम्मेलन ने यह तय कर लिया था कि कवि-गण तीन वर्ष से अधिक कौंसिल में न रहें। डेढ़ वर्ष तक पुराने ढर्रे के हिन्दी और उर्दू के कवि अपनी कारगुज़ारी दिखाकर इस्तीफा दे देंगे। फिर डेढ़ वर्ष तक नये ज़माने के कवि अपना करतब दिखायेंगे।

इस निश्चय के अनुसार ब्रजभाषा के कवि और कुछ उर्दू के शायर मेम्बर चुन लिये गये थे। किसी एक ज़िले से ब्रजभाषा के कवि के अभाव में खड़ीबोली के भी एक कवि मेम्बर होकर कौंसिल में पहुँचे थे। शेष सब पुराने ही ढर्रे-ढाँचे के थे।

कौंसिल की पहली बैठक में दर्शकों की बेहद भीड़ थी। सभा-भवन में सबसे पहले कवि-कुञ्जर मस्तानी चाल से झूमते हुये और यह सवैया पढ़ते हुये पधारे—

खाने को भंग नहाने को गंग
चढ़ै को तुरंग ओढ़ै को दुसाला।
धर्म धुरंधर औ महिषी पति
द्वार झुलै गज जूथक हाला॥
पान पुरान सोहागिन सुन्दरि
गोद बिराजत सुन्दर बाला।
दो महँ एक तो देहु कृपानिधि
दो मृगनैनी कि दो मृगछाला॥

धीरे-धीरे कवि-सम्राट, कवि-केसरी, कवीन्द्र, कविरत्न, कविराज, कवि-कलाधर, कविता-कान्त, कविवर, कवि-शार्दूल, कवि-शिरोमणि, कवि-महारथी, कवि-कन्दर्प, कवि-कोकिल आदि कवि आ-आकर कुर्सियों पर बैठ गये।

सबकी आँखों से भङ्ग का सुरूर झलकता था। इतने में एक शायर साहब तशरीफ़ लाये। उनके तमाम बदन में घाव थे, खून बह रहा था। लोहू के छींटे रास्ते में टपक रहे थे। कलेजे में एक तीर आधा घुसा हुआ था। वे यह गुनगुनाते थे—

नजर पड़ा एक बुते परीवस
निराली सजधज नई अदा का।
जो उम्र देखो तो दस बरस की
य' कहर आफत ग़जब खुदा का॥

खड़ीबोली के कवि महाशय पहले ही आ पहुँचे थे। उन्होंने

शायर को देखते ही कहा—आइये, आइये—'आदाबर्ज़'। एक तीर आपने जुमाही रहने दिया?

शायर ने 'तसलीमात' कहकर कहा—

क्या पूछते हो यारो
इस तीर नीम-कश को।
य' खलिश कहाँ से होती
जो जिगर के पार होता॥

शायर को देखकर ब्रजभाषा के कवियों मे खलबली मच गई। एक ने अपने एक पार्श्ववर्ती कवि से धीरे से पूछा—इस खड़ीबोली के तुक्कड़ ने शायर को कहा, 'आधा बर्द'। शायर ने कहा, 'तसलीमात'। 'तसलीमात' का अर्थ तो मैं समझ गया कि इस गाँधी टोपीवाले खद्दर-धारी तुक्कड ने जेल में ख़ूब तसली माँजी होगी। शायर ने ख़ूब चुटकी ली। पर 'आधा बर्द' का रहस्य मै नहीं समझ सका।

पार्श्ववर्ती कवि ने भी अर्थ बताने में असमर्थता प्रकट की।

इतने मे एक कवि ने ज़ोर से कहा—शृंगार में यह वीभत्स-रस कहाँ से घुसा आ रहा है?

इसी समय कुछ शायर और आ पहुंचे। सब लोहूलुहान थे और पीड़ा से तड़प रहे थे। अब तो ब्रजभाषा के प्रायः सब कवि एक स्वर से बोल उठे—शृङ्गार में वीभत्स-रस को हम नहीं आने देंगे।

सभापति भी एक कवि चुन लिये गये थे। उन्होंने मेम्बरों के इस उज्र को जा समझा और शायरों को सबसे अलग स्थान दिया।

शायर का स्वागत करने के कारण खड़ीबोली के उस तुक्कड़ से भी कवि-गण अप्रसन्न हो गये। उसे उन्होंने अलग तो नहीं

बैठाया, पर उसके उपनाम 'ईश्वर' को उन्होंने 'ऊसर' कर लिया। सदस्य लोग उसे 'ऊसर' कवि कहने लगे।

कौंसिल का कार्य आरम्भ करते हुए सभापति कवीन्द्र ने पहले ईश्वर-स्तुति की—

आलस नींद में मातो सदा
　　अरु उद्यमहीन कुबेर खवैया।
प्यास लगै नहि पानी भरौ
　　अरु पास धरो उठि के न पिवैया॥
ऐसे निकम्मन को भरि जन्म
　　दयानिधि हो तुम पेट भरैया।
भोर ते साँझ औ साँझ ते भोर लौं
　　मोसों कपूत न तोसों दिवैया॥

खड़ीबोली का वह तुक्कड़ ईश्वर-स्तुति में शरीक होने का लोभ संवरण नहीं कर सका। उसने उठकर कहा—ईश्वर-स्तुति पर मेरी भी एक कविता सुन ली जाय। सभापति की स्वीकृति की कुछ परवा किये बिना ही वह पढ़ने लगा—

हे ईश्वर! तुम सबके स्वामी।
　　मैं तुमको प्रणाम करता हूँ॥
शेष हुआ जाड़े का मौसम।
　　आया है अब समय बसन्ती॥
फूले सेमर ढाक विपिन में।
　　नाम बड़े और दर्शन छोटे॥
रूप देख आये बहु पक्षी।
　　पर लौटे अपना मुँह लेकर॥

वह बीच ही से रोक दिया गया। इतने में एक शायर

साहब उठ खड़े हुए। वे आगरे से आये थे। उन्होंने कहा—मैं भी खुदा को दुआये दे लूँ—

फरहाद की निगाहें शीरों की पसलियाँ हैं।
मजनूँ का सर्द आहें लैला की उँगलियाँ हैं॥
क्या खूब नर्म नाजुक दी आगरे की ककड़ी।
मुझको भी ऐ खुदा! तू दे नून तेल लकड़ी॥

इस प्रकार स्तुति-प्रार्थना हो जाने के बाद सभापति ने आरम्भिक भाषण किया। भाषण के अन्त में उन्होंने कहा—भाइयो! जनता में सुख की वृद्धि करना, दुःख को घटाना, ख़र्च कम करना और आय बढ़ाना यही कौंसिल का मुख्य कार्य है। आज की बैठक समाप्त की जाती है। कौंसिल की दूसरी बैठक एक महीने बाद होगी। तबतक आप लोग अपने-अपने ज़िले का दौरा करके जनता के दुःखों की जाँच कर आइए और कौंसिल में प्रस्ताव उपस्थित कीजिए। जनता ने कवियों को कौंसिल का मेम्बर चुनकर जो बुद्धिमानी की है, उसके लिए उसे धन्यवाद देने का प्रस्ताव मैं उपस्थित करता हूँ। आशा है, आप लोग स्वीकार करेंगे।

प्रस्ताव सर्व सम्मति से पास हो गया।

एक महीने के बाद कौंसिल की बैठक फिर प्रारम्भ हुई। वही बाँके-तिछें मस्त कवि फिर जमा हुए। सबके रङ्ग-ढङ्ग, सज-धज, काट-छाँट, नाज़ो-अदा और वेष-भूषा जुदा-जुदा थे। कानपुर के मेम्बर ने कौंसिल में सबसे पहला प्रस्ताव यह उपस्थित किया—

यह कौंसिल स्त्रियों से अनुरोध करती है कि वे चश्मा न लगाया करें। क्योंकि इससे उनके कटाक्ष की तेज़ी बढ़ जाती है और पुरुषों को कष्ट होता है।

प्रस्ताव सुनकर खड़ीबोली का कवि चिल्ला उठा—अश्लील, अश्लील।

ब्रजभाषा के एक कवि ने मुँह टेढ़ा करके चिढ़ाते हुए कहा—अश्लील, अश्लील। तुम्हारे-जैसे नामर्द को क्या मालूम कि कटाक्ष क्या होता है।

सभापति ने वोट लिया तो उसी एक को छोड़कर शेष सबने प्रस्ताव के अनुकूल वोट दिये। प्रस्ताव में इतना और जोड़ दिया गया कि चश्मे के दूकानदार स्त्रियों के हाथ चश्मा न बेचें।

गर्मी का मौसम था। संयुक्त-प्रान्त में आगरा, झाँसी और प्रयाग ऐसे स्थान हैं, जहाँ अन्य ज़िलों की अपेक्षा अधिक गर्मी पड़ती है। उस साल इतनी गर्मी पड़ी कि तापमापक-यन्त्र में पारा ११७-११८ डिग्री तक चढ़ गया। सैकड़ों आदमी लू लगने से मर गये। कुओं से पानी सूख गया। जंगलों मे पशु और पक्षी पानी बिना मर गये। यह सब खबरें समाचार-पत्रों से प्रकाशित हुईं। झाँसी के मेम्बर ने यह प्रस्ताव उपस्थित किया—

इस बात की जाँच की जाय कि इस साल झाँसी, प्रयाग और आगरे में अधिक गर्मी क्यों पड़ी? मेरा अनुमान है कि इसमे प्रकृति की क्रूरता नहीं है, बल्कि यह आग अपने ही घर की पैदा की हुई है। तीन सौ वर्ष पहले भी ऐसी घटना इस देश में हुई थी और उसका प्रभाव मानसरोवर तक पड़ा था। सुनिए, महाकवि गंग ने कहा है—

बैठी थी सखिन संग पिय को गवन सुन्यो,
सुख के समूह में वियोग आग भरकी।
"गंग" कहै त्रिविध सुगन्ध लै पवन बह्यो,
लागत ही ताके तन भई बिथा जर की॥

प्यारी को परसि पौन गयो मानसर पहँ
लागत ही औरे गति भई मानसर की।
जलचर जरे औ सेवार जरि छार भयो,
जल जरि गयो पङ्क सूख्यो भूमि दरकी॥

जान पड़ता है कि उक्त तीन ज़िलो के पुरुष गर्मी में विदेश-यात्रा करते हैं। उनकी विरहिणियों की विरहाग्नि से उन ज़िलों की गर्मी बढ़ जाती है।

सर्व-सम्मति से यह निश्चय हुआ कि उक्त तीन ज़िलों के कलक्टरों को लिखा जाय कि वे गर्मी में अपने ज़िले से किसी विवाहित पुरुष को परदेश न जाने दें।

कौंसिल की इसी बैठक में रेलवे बोर्ड के चैयरमैन का यह पत्र पढ़ा गया कि झरिया, रानीगंज और आसनसोल की कोयले की खानों में मजदूरों ने हड़ताल कर दी है। अतएव-कोयले की कमी से कुछ दिनों के लिये कुछ ट्रेनें बन्द कर दी जायँगी।

इसपर बड़ी देर तक विचार होता रहा। एक शायर ने अन्त में उठकर यह प्रस्ताव उपस्थित किया—

जब उर्दू के शायरों में ऐसी आग है कि—

यही सोजे दिल है तो महशर में जलकर।
जहन्नुम उगल देगा मुझको निगलकर॥

× ×

बन्द हो जाती हैं सैयारों की आँखे ख़ौफ से।
फेंकता हूँ जब मैं दिल से आहे आतिशबार को॥

× ×

मैं अगर आह करूँ दम मे समुन्दर जल जाय।
क्या अजब है जो मेरे जिस्म से बिस्तर जल जाय॥

तो इन शायरो से काम क्यों न लिया जाय?

एक कवि ने एतराज़ किया—यह शायरों की नहीं, आशिकों की बाते हैं।

शायर ने कहा—वाह जनाव!

जो हूरों प मरता है वे देखे-भाले,
है क्या कोई आशिक मुसलमाँ से बढकर?

हरएक मुसलमान आशिक होता है और हरएक आशिक शायर होता है।

अन्त मे बडी बहस के बाद यह निश्चय हुआ—एंजिनों के लिये अब कोयले की खरीद सदा के लिये बन्द कर दी जाय। एञ्जिन चलाने के लिये प्रत्येक ब्वॉयलर के नीचे एक शायर बैठा दिया जाय। शायर को २००) मासिक वेतन दिया जाय। शायर की आह से पानी गरम होगा, भाप बनेगी और एञ्जिन चलेगा।

दूसरी बैठक के मुख्य प्रस्ताव यही थे। तीसरी बैठक बरसात मे हुई। उस साल इतना पानी बरसा कि गोमती मे बाढ आगई और लखनऊ, सुलतानपुर और जौनपुर पानी मे डूब गये। कौंसिल मे बाढ-पीडितों की सहायता का प्रस्ताव पेश हुआ।

एक कवि ने कहा—इस बाढ मे बादलों ही का नहीं, आँखों का पानी भी शामिल है। पौने दो सौ वर्ष पहले तोप कवि के समय मे ऐसी एक बाढ़ आ चुकी है। प्रमाण लीजिए—

कामिनी के अँसुवान के नीर पनारे बहे बहिके भये नारे।
नारे भये नदिया बहिके नदिया नद ह्वै गये काटि करारे॥

बेगि चलौ तौ चलौ घर को कवि तोष कहैं सुनु प्रानपियारे ।
वे नद चाहत सिन्धु भये अब सिन्धु ते ह्वै हैं जलाहल सारे ॥

जान पडता है, कहीं गोमती-तट पर कोई विरहिणी रोई है, इसी से यह बाढ आई है ।

एक शायर ने सोचा—एंजिन गरम करने के काम में तो हमारे शायरों को अच्छी आमदनी हो गई । इस मामले में भी अपने भाइयों का कुछ उपकार करना चाहिये । उन्होंने कहा—

हजरत !-यह बाढ विरहिणियों के आँसू से नही, शायरों के आँसू से आई है । उन दिनो लखनऊ मे मशायरा था । एक से एक बढ़कर रोनेवाले शायर जमा थे । उनके आँसुओं से गोमती दरिया चढ़ गया । भला शायरों के मुकाबले मे विरहिणियाँ क्या रो सकती है ? हमारे यहाँ ऐसे अच्छे रोनेवाले शायर हैं—

रोऊँगा आके तेरी गली मे अगर मैं यार ।
पानी ही पानी होगा हरेक घर के आसपा ॥

× ×

समुन्दर कर दिया नाम उसका
नाहक़ सबने कह-कह कर ।
हुये थे जमा कुछ आँसू
मेरी आँखो से बह-बह कर ॥

× ×

यहाँ तक गिरिया मे रोये सहर तक ।
गली कूचे मे पानी है कमर तक ॥

× ×

बाँधेगी गर रोने प मेरी चश्मतर कमर।
पाओगे आसमाँ प तुम पानी कमर कमर॥

× ×

हम जेरे खाक लेके जो ये चश्मतर गये।
अन्धे कुयें भी जितने थे पानी से भर गये॥
मुर्दे जो पास थे पड़े वे डूबने लगे;
कब्रों से भाग-भाग के जाने किधर गये॥

मेरा प्रस्ताव है कि शायरों को कुछ मासिक वेतन दिया जाया करे कि वे न रोया करें और रोयें भी तो गर्मियो में; जिससे बाढ न आवे।

एक कवि ने इसका विरोध किया और कहा—यह बात हमारी समझ मे नही आती कि शायर रोते क्यों है? विरहिणियाँ तो अपने पति के लिये रोती हैं। शायरों को भी क्या पति की ज़रूरत होती है?

इसपर खडीबोली के कवि ने कहा—अश्लील, अश्लील।

एक दूसरे कवि ने कहा—इन शायरों को ऐसे स्थान में भेज देना चाहिये, जहाँ पानी की अत्यन्त आवश्यकता हो।

सभापति ने पूछा—ऐसे स्थान कौन हैं?

कवि ने उत्तर दिया—गोबी, सहारा, अरब और बीकानेर।

अन्त में बहु-सम्मति से यह प्रस्ताव पास हुआ—

बीकानेर महाराज को लिखा जाय कि यदि वे अपने यहाँ इस प्रांत के शायरों के बसाने का प्रबन्ध करें तो युक्त-प्रांत की गवर्नमेन्ट उनको अच्छे-अच्छे रोनेवाले इतने शायर चुनकर दे सकती है कि महाराज को अपने राज्य मे नहर लाने का झंझट न करना पडेगा। यदि महाराज की स्वीकृति आ जाय तो कलक्टरों को आज्ञा दी जाती है कि वे सूचना पाते ही अपने ज़िले के

शायरों को बीकानेर भेज दें। उनका राह-खर्च सरकार देगी। जो शायर बीकानेर जाना नापसन्द करेंगे वे ज़बरदस्ती गोबी, सहारा या अरब में ले जाकर छोड़ दिये जायँगे।

कौंसिल की इस बैठक में महत्व-पूर्ण प्रस्ताव यही था। अगली बैठक जाड़ों में हुई। उसमें एक कवि ने यह प्रस्ताव उपस्थित किया—

रेल और युनिवर्सिटियों के कारण इस प्रांत में विरहिणियों की संख्या बढ़ गई है। लाखों विरही प्रतिदिन रेल में चढ़े फिरते हैं और हजारों विरही युनिवर्सिटी में पढ़ रहे हैं। मैंने इनके घरों में जाँच करके देखा है कि स्त्रियों को पति का वियोग ही नहीं अखर रहा है, बल्कि उनको कोयल और पपीहे भी सताते रहते हैं। अतएव मेरा प्रस्ताव है कि कोयल और पपीहों के मारने की ओर गवर्नमेंट वैसा ही ध्यान दे, जैसा वह मच्छर, चूहों और कुत्तों को मारने के लिये देती है।

एक कवि ने पूछा—विरहिणियों के लिये दक्षिण-पवन भी तो दु:खदायी है?

प्रस्तावक ने कहा—पहला प्रस्ताव पास हो जाने दीजिये, तो दक्षिण-पवन का भी प्रबन्ध किया जायगा।

वोट लेने पर कोयल और पपीहों के मारने का प्रस्ताव पास हो गया।

दूसरा प्रस्ताव उसी कवि ने यह उपस्थित किया—

विन्ध्याचल-पर्वत-श्रेणी पर एक ऐसी ऊँची दीवार उठा दी जाय, जैसी चीन में उठाई गई है। उस दीवार से दक्षिण-पवन के आने में रुकावट होगी और सूबे में विरहाग्नि न भभकेगी।

सभापति ने कहा—

यह प्रस्ताव एसेम्बली में उठाया जाना चाहिये। विन्ध्याचल-

पर्वत-श्रेणी का बहुत थोडा अंश हमारे प्रांत मे है।

प्रस्तावक ने अपना प्रस्ताव वापस ले लिया।

एक कवि ने यह प्रस्ताव किया कि शहरों मे रोशनी के लिए सरकार का बडा रुपया ख़र्च होता है। इस मद मे किफायत करने के लिये यह अच्छा होगा कि जयपुर या मथुरा से सुन्दरियाँ मँगाकर प्रत्येक शहर मे एक-एक ऐसी ऊँची मीनार पर रात-भर बैठा दी जाया करें, जहाँ से उनके चन्द्र-मुख का प्रकाश सारे शहर मे पहुंच सके। कविवर बिहारीलाल के समय मे ऐसी सुन्दरियाँ जयपुर और मथुरा मे थी। प्रमाण—

पत्रा ही तिथि पाइये, वा घर के चहुँपास।
नितप्रति पूनो ही रहत, आनन ओप उजास॥

इसपर कौंसिल ने सर्वसम्मति से निश्चय किया—

संयुक्त-प्रांत के प्रत्येक शहर मे आवश्यकतानुसार काफी ऊँची एक-एक मीनार बनाई जाय। उसपर रात मे सूर्यास्त से सूर्योदय तब एक-एक चन्द्र-मुखी बैठा दी जायँ। चन्द्र-मुखियों का कर्तव्य होगा कि रात-भर वे अपना मुख चारोंओर घुमाती रहे। प्रत्येक चन्द्र-मुखी को २००) मासिक वेतन दिया जायगा। मथुरा के कलक्टर चन्द्र-मुखी सप्लाई करे। और जयपुर दरबार को लिखकर प्रार्थना की जाय कि इस सुप्रबन्ध मे वे हमारी सहायता करें। कौंसिल ने यह मान लिया है कि उनके राज्य मे चन्द्र-मुखियाँ बहुत हैं।

बलिया के मेम्बर ने यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि इस वर्ष वृष्टि अधिक होने से हमारे ज़िले मे मलेरिया का प्रकोप बढ गया है। डाक्टर कहते हैं कि मच्छरों की वृद्धि ही से मलेरिया पैदा होता है। अतएव मच्छरों को हटाने के लिये प्रत्येक गाँव के लिये

जहाँ मलेरिया फैला हो, एक-एक शायर दिया जाय, जिसकी आह के धुवें से मच्छर भाग जायँगे। इस इलाज का उपयोग स्वर्गीय महाकवि अकबर ने किया था। प्रमाण—

रकीबे सिफला-ख़ू ठहरे न मेरी आह के आगे।
भगाया मच्छरों को उनके कमरे से धुवाँ होकर॥

शायरों के मुँह से बेहद धुवाँ निकलता है। इसके साक्षी महाकवि ज़ौक़ भी हैं—

न करता जब्त मैं नाला तो फिर ऐसा धुवाँ होता।
कि नीचे आसमाँ के यक नया और आसमाँ होता॥

निश्चय हुआ कि बलिया के कलक्टर को लिखा जाय कि वह मलेरियावाले स्थानों में शायरों के भेजने का प्रबन्ध करे। शायर किसी बड़े पिंजड़े में बैठाकर गाँव के बीच में या बाहर किसी अच्छे स्थान पर रख दिये जाया करें। हवा का रुख देखकर पिंजड़े का भी स्थान बदल दिया जाया करे। प्रत्येक शायर को ५०) मासिक दिया जाय।

बनारस के मेम्बर ने यह प्रस्ताव उपस्थित किया—प्रत्येक क़स्बे और शहर के आस-पास सरकार की ओर से अभिसार-स्थान बनवा दिये जायँ।

ऊसर कवि चिल्ला उठा—अश्लील, अश्लील।

कवीन्द्र ने मुँह चिढाते हुये कहा—अश्लील, अश्लील। कुछ समझते भी हो? नाम तो हम लोगों का है, मेमबर। पर यहाँ मेम कहाँ हैं? ख़ाली बर ही बर तो बैठे हैं।

सभापति ने कहा—यह प्रस्ताव अगली बैठक के लिये स्थगित किया जाता है।

मैनपुरी के मेम्बर ने यह प्रस्ताव उपस्थित किया—

स्त्रियों को देखे बिना हम लोगों की बुद्धि मे स्फूर्ति नहीं आती। अतएव या तो सभापति महोदय सस्त्रीक आया करे अथवा हम लोग किसी मनोहारिणी, सुकविता-कारिणी, स्वच्छन्द-विहारिणी, माधुर्य-प्रसारिणी रमणी-रत्न को सभापत्नी-पद की अधिकारिणी चुन लें।

खड़ीबोली के कवि ने 'सभा-पत्नी' शब्द पर आपत्ति की और इस प्रस्ताव पर भी कहा—अश्लील, अश्लील।

यह प्रस्ताव भी अगली बैठक के लिए स्थगित कर दिया गया।

लखनऊ के मेम्बर ने यह प्रस्ताव उपस्थित किया—

मदरसों मे नायिका-भेद, नख-शिख और काम-शास्त्र की शिक्षा अनिवार्य कर दी जाय। इसके बिना सहृदयता नष्ट होती जा रही है। आजकल की केवल पेट-भराऊ शिक्षा ही का यह कुपरिणाम है कि शिक्षित-समाज मे शुष्क हृदय, नीरस, अरसिक, कविता-कानन मे एरण्ड-रूप खड़ीबोली के कवि पैदा होने लगे हैं।

निश्चय हुआ कि यह प्रस्ताव विचारार्थ एक कमेटी को सौपा जाय, जिसमे पॉच सदस्य हों। प्रस्तावक ही संयोजक हों। पाँच मेम्बरों के नाम—कवि-कुञ्जर, कवि-पञ्जर, कवि केसरी, कवि-शार्दूल और प्रस्तावक।

कवियों की कौंसिल की प्रत्येक बैठक के समाचार दैनिक और सप्ताहिक पत्रों मे सदा छपते रहे। उन्हे पढ-पढकर संयुक्त-प्रान्त की जनता खूब कुढती रही। कांग्रेस के कार्य-कर्ता अलग पानी पी-पीकर कोस रहे थे। परिणाम यह हुआ कि पूरा एक वर्ष भी न बीतने पाया कि जनता ने अपने मेम्बरों के विरुद्ध बग़ा-वत खड़ी कर दी। प्रत्येक ज़िले से अपने-अपने मेम्बरों के विरुद्ध

यही चिल्लाहट सुनाई पड़ने लगी कि "चले आओ, हम दूसरा मेम्बर चुनेंगे।"

जनता का एकमत देखकर भारत-सरकार ने सूबे की कौंसिल तोड़कर नई कौंसिल बनाने का हुक्म निकाल दिया।

कवि लोग घर लौटकर अपनी-अपनी विरहिणियों के गले लगे और कहने लगे—नाहक वहाँ जा फँसे थे।

खड़ीबोली के कवियों को अपनी करतूत दिखाने का मौक़ा ही न मिला।

स्त्रियों की कौंसिल

(१)

[स्थान—कवि का शयनागार]

स्त्री—मैं स्त्रियों की कौंसिल बनाने जा रही हूँ।

कवि—क्यों ?

स्त्री—पुरुषों ने हमारे सब अधिकार छीनकर हमें घर की दासी बना रक्खा है। हम अपना अधिकार चाहती हैं।

कवि—दासी तो तुम अपने मुँह से बन रही हो। पुरुष की तो तुम स्वामिनी, हृदय-हारिणी और जन्म-सफल-कारिणी हो। आजकल कुछ पढ़ी-लिखी स्त्रियों का दिमाग़ फिर गया है। वे पुरुषों के समान अधिकार चाहती हैं। यद्यपि समाज में उनको पुरुषों से कही अधिक अधिकार पहले ही से प्राप्त हैं।

स्त्री—जैसे ?

कवि—जैसे, तुम घर-गृहस्थी के साधारण काम करती हो, जिनमें परिश्रम कम करना पड़ता है। रसोई तो तुम्हीं को बनानी चाहिए। क्योंकि विधाता का विधान यही है। तुम्हारा हाथ लगते ही भोजन अमृत हो जाता है।

स्त्री—तुम्हें विधाता का यह विधान कैसे मालूम हुआ ?

कवि—मैं सब जानता हूँ। जहाँ न पहुँचे रवि; वहाँ पहुँचे कवि। विधाता ने पुरुषों के साथ पहले ही से अन्याय कर रक्खा है। उसने पुरुषों की अपेक्षा तुमको अधिक रूप दिया है। तुम्हारा शरीर मख़मल-सा मुलायम, आँखे ऐसी कटीली कि—

जिहि दिसि दौरत निर्दयी, तेरे नैन कजाक।
तिहि दिसि फिरत सनेहिया, किये गरेबाँ चाक॥

तुम्हारे दाढ़ी-मूँछ नहीं। भला बताओ, पुरुषों की तरह तुम्हारे भी दाढ़ी-मूँछ होती, तो क्या संसार में इतनी लड़ाइयाँ कभी लड़ी गई होतीं? और करोड़ों पुरुषों की हत्यायें हुई होतीं? दाढ़ी-मूँछ से युक्त तुम्हारे मुँह से तो लोग जटा-युक्त नारियल के हुक्के को अधिक पसंद करते।

स्त्री—तुम मेरा अपमान करते हो!

कवि—अपमान की तो कोई बात मैं नहीं कह रहा हूँ। मैं तो विधाता का पक्षपात बतलाता हूँ। तुम्हारे रूप की ज्वाला में अबतक पृथ्वी के करोड़ों पुरुष पतंगे की तरह जल मरे होंगे। विधाता ने तुमको इतना रूप दिया क्यों?

स्त्री—इसमें मेरा क्या दोष?

कवि—मैं तुम्हारा दोष कब कहता हूँ? मैं तो विधाता के पक्षपात की चर्चा करता हूँ। तुम्हारा रूप-रंग देखकर पुरुषों ने भी तुम्हारे साथ रियायत की है। भला, यदि पुरुष तुम्हे पेड़ पर चढ़कर लकड़ी तोड़ने, घास काटने, हल जोतने, ठेला चलाने, झूठ बोलकर धन कमाने और कड़ी धूप में सड़क कूटने का काम सौंपकर अपने ज़िम्मे घर के भीतर, छाया में, सुख से बैठकर बर्तन माँजने, चौका देने, रसोई बनाने और चक्की पीसने का काम ले लेते, तो बताओ आज तुम्हारी क्या दशा होती? तब क्या तुम ऊँची एँड़ी के बूट पहनकर ऊँट की तरह मचकती फिरती और चश्मा लगाकर बाइसिकिल की तरह आँखे मटकाया करती?

स्त्री (क्रोध से)—तुम मेरी दिल्लगी उड़ाते हो? मैं एक भी पुरुष को कौंसिल में नहीं रहने दूँगी।

कवि—कौंसिल में तुम्हीं सब रहो, मैं इसकी पर्वाह नहीं करता। पर, पुरुषों के एहसान न भूल जाना।

स्त्री—एहसान कौन-से?

कवि—तुम्हारे जिस रूप ने पुरुष से पुरुष का गला कटवाया, उसी रूप की वृद्धि के लिये पुरुष अनंत सागर-तल में डूबकर, प्राणों का मोह छोड़कर, मोती निकालता है, जिससे तुम्हारे गले का हार बनता है। पृथ्वी का वक्षःस्थल फाड़कर पुरुष सोना, चाँदी, हीरा और जवाहर निकालता है। करोड़ों जीवों की हत्या करके रेशमी साड़ी तैयार करता है, जिसे पहनकर तुम तितली की तरह उड़ती फिरती हो। लाखों पुरुष-सुनार तुम्हारे लिये गहने गढ़ते और अपनी आँखें फोड़ते तथा कमर तोड़ते हैं।

स्त्री—यह तो पुरुषों की मूर्खता है।

कवि—पुरुषों की मूर्खता नहीं है, तुम्हारी है। विधाता ने तुमको ऐसा रूप दिया है कि बड़े-बड़े विश्व-विजयी सम्राट् तुम्हारे रूप के सामने नतमस्तक हो जाते हैं, फिर भी तुम ऐसी मूर्खा हो कि अपने को कुरूपा समझती हो और रूपवती बनने के लिये गहने पहना करती हो!

स्त्री—मैंने कब कहा कि मुझे गहने बनवा दो!

कवि—क्यों झूठ बोलती हो? मैं जभी भोजन करने बैठता हूँ, तभी तुम प्रतिदिन किसी-न-किसी गहने के लिये अनुनय-विनय, क्रोध, धमकी, रूठने और आँसू गिराने आदि का अभिनय किया करती हो।

स्त्री—अच्छा, यह एहसान मैं तुम्हारा मानती हूँ।

कवि—और सुनो। सैकड़ों कवियों ने तुम्हारे लिये जीवन-दान दिया है। बिहारी ने जन्म-भर तुम्हारी ही उपासना की। तुमने ज़रा-सा मुस्कुरा दिया, बिहारी ने उसे भी लिख लिया। तुमने

ज़रा-सी भौं मटका दी, बिहारी ने उसे भी लिख लिया। तुम चलते-चलते कहीं रुक गई, या पैर में कंकड़ी धँस जाने से तुमने नाक सिकोड़ ली, बिहारी ने उसे भी नोट कर लिया। देव ने वृद्धावस्था तक तुम्हारी खुशामदें कीं। मतिराम की मति-गति सब तुम्हीं में लीन हो गई। पद्माकर ने तो तुम्हारा साथ तब छोड़ा, जब उन्हें कोढ़ हो गया। यह तो सब मरे हुये कवियों का हाल है। आजकल तो हज़ारों जीवित कवि तुम्हारी खुशामद में भगवान् तक को भूल गये हैं। भला, इतने एहसानों के होते हुये, तुमको पुरुषों के सामने नम्रता से सिर झुका लेना चाहिये, न कि उद्दंडता और अकृतज्ञता-पूर्वक अधिकार की वृद्धि चाहना चाहिये ?

स्त्री—(हँसकर) तुमने खूब याद दिलाई। कवियों से तो मुझे ख़ास चिढ़ है। कवि बड़े झूठे और लबार होते हैं ?

कवि—जैसे ?

स्त्री—जैसे, उस दिन एक स्थानीय दैनिक पत्र में ये पंक्तियाँ छपीं—

आज बिसमिल का हौसला देखा।
जाके मकतल में सर कटा आया॥

मैं इसे पढ़कर बहुत दुःखी हुई। मैं समझ न सकी कि किस अपराध से वह मक़तल (वधागार) में पहुँचे। उनकी स्त्री मेरी मित्राणी है। मैं उसे सान्त्वना देने के लिये उसके घर पहुँची। वह बेचारी सुख से लेटी हुई उपन्यास पढ़ रही थी। मैंने समझा, इसे ख़बर नहीं कि इसका पति मक़तल मे पहुँच गया है। मैंने शोक प्रकट करते हुए दैनिक-पत्र का वह अंश उसे दिखलाया। वह खिल-खिलाकर हँस पड़ी और कहने लगी—बहन, मेरे पति कवि हैं। कवि तो सदा ही झूठ बोला करते हैं।

मैं बहुत ही अप्रतिभ हुई और अपमान न सहन करके सीधी उसके पति के पास पहुँची, जो म्युनिसिपैलिटी के दफ़्तर मे नौकर हैं। वह हज़रत दफ़्तर मे बैठे जलपान कर रहे थे। मैंने झुँझलाकर कहा—जनाब, आप तो यहाँ बैठे जलेबियाँ उड़ा रहे हैं, वहाँ अख़बार में छप गया कि आप क़त्ल हो गये !

उन्होंने हँसकर कहा—यह तो रोज़ का हाल है।

मैं और झुँझलाई और सीधी घर चली आई। तबसे मैं कवियों को बड़ी घृणा की दृष्टि से देखने लगी हूँ।

कवि—यह तो तुम्हारी समझ का दोष है।

स्त्री—क्यों नहीं ! झूठ बोलो तुम, लबारी करो तुम, व्यभिचार फैलाओ तुम; कुटनापन करो तुम, युवक-युवतियों को बिगाड़ो तुम, और समझ का दोष हो हमारी !!

कवि—मैंने क्या व्यभिचार फैलाया ?

स्त्री—सुनो ! तुम्हीं ने तो लिखा है—

यहि पाखे पतिव्रत ताखे धरौ।

× ×

बावरी जौ पै कलंक लग्यो
तो निसंक ह्वै क्यों नहि अंक लगावति ?

क्या यह व्यभिचार को प्रोत्साहन देना नहीं है? और सुनो—

यदपि हमारो कन्त रहत हमेस घर
तदपि तिहारो दुख आनि मोहि घेरो री।
प्यारी 'पदमाकर' परोसिन हमारी तुम
याही ते भयो है छीन मो तन घनेरो री॥

है है कैसी हाय अब और यह भौन लाग्यो
होन लाग्यो भौन भौन भौंरन को फेरो री।
सिसिर को अन्त आयो प्रगट बसन्त आयो,
अन्त आयो मेरो पै न आयौ कन्त तेरो री॥

क्या तुम पसन्द करते हो कि तुम्हारी स्त्री भी इसी तरह अपनी पड़ोसिन के कंत से अनुराग रक्खे? अगर नहीं, तो तुम ऐसी बातों का प्रचार क्यों करते हो?

कवि—(सकुचाकर) हाँ, यह अपराध मैं स्वीकार करता हूँ।

स्त्री—यही एक? सैकड़ों अपराध हैं। सुनते जाओ, तुम कैसे छली हो—

केलि के मन्दिर बैठी हुतीं
दुइ प्रेमभरी तहँ प्रीतम आयो।
दोउन सों करिकैं मधुरी
बतियाँ अपने ढिग में बिठरायो।
"भानु" सुगंध सुँघायबे के मिस
एक के नैन कपूर लगायो।
मींजन जौलौं लगी तबलौं
हँसि दूजी को आपने अङ्क लगायो॥

हाय, हाय! ऐसा छल? पुरुष के हृदय में सच्चा प्रेम क्या नाम-मात्र को भी नहीं होता?

(कवि नीचे की ओर मुँह लटकाये हुये, चुप!)

स्त्री—और सुनो। नन्हीं-नन्हीं बालिकाओं के साथ भी बलात्कार करने मे तुम्हे लज्जा नहीं आती—

खेलन चोर मिहींचनी आजु
गई हुती पाछिले द्योस की नाईं।

आली कहा कहौं एक भई
"मतिराम" नई यह बात तहाँई ॥
एकहि भौन दुरे इक सगही
अंग सों अंग छुवायो कन्हाई ।
कम्प छुट्यो तन स्वेद बढ़्यो
तनु रोम उठ्यो अँखियाँ भरि आई ॥

अपराध तो तुम करते हो, नाम लगा देते हो कन्हाई के! एक छोटी-सी अविवाहिता कन्या आँख-मिचौनी खेलने गई थी, उसके साथ इस तरह के व्यवहार का अनुमोदन क्या सभ्य-समाज में कभी किया जा सकता है?

कवि—तुम अनुमोदन की बात करती हो, ऐसे ही कवित्तों के पीछे तो मेरी जीविका चलती है। राज-दरबार से बढ़कर सभ्य-समाज और कहाँ मिलेगा? ऐसे कवित्त पर तो चारोंओर से वहाँ पुरस्कार की वर्षा होने लगती है। यह साड़ी, जो तुम पहने हो, इस सवैया के कहने पर मिली थी—

जाति हुती निज गोकुल को
हरि आयो तहाँ लखि कै मग सूना ।
तासों कह्यो अकुलाकर यों
अरे साँवरे बावरे तैं हमें छू ना ॥
आज धौं कैसी भई सजनी उत
वा विधि बोल कढ़्योई कहूँ ना ।
आनि लगायो हिये सों हियो
भरि आयो गरो कहि आयो कछू ना ॥

स्त्री—(साड़ी उतारकर, फेंककर और दूसरी पहनकर) राम, राम, यह पाप की कमाई मैं छू भी नहीं सकती। भला, इस तरह

भी कोई किसीके धर्म पर ढाके डालता है? और तुम इसका समर्थन करते हो? मुझे मत छुओ।

कवि—छुओ, चाहे मत छुओ। पर, एहसानों को तो याद रखना।

स्त्री—और कौन-से एहसान हैं?

कवि—देखो, हमने, अर्थात् पुरुषों ने, स्त्रियों के नाम कितने सुन्दर रक्खे हैं! जैसे, मालती, कुमुदिनी, हेमनलिनी, ललिता, कामिनी, सुन्दरी, सरला, माधवी, मोहिनी, कमला, तारा, किशोरी, प्रभा इत्यादि। सभी नाम उच्चारण मे सुगम, सुनने में मधुर और समझने में सुखद हैं।

स्त्री—(भौह मटकाकर) और पुरुषों के नाम?

कवि—धृष्टद्युम्न, इक्ष्वाकु, युधिष्ठिर, धृतराष्ट्र, मार्कण्डेय, क्षपणक, मल्लिनाथ, खड्गमल्ल, क्षोणीन्द्र, हरिश्चन्द्र। कोई नाम ऐसा नहीं, जिसमे दो चार जगह मुँह न टेढ़ा करना पड़ता हो। उच्चारण में विषम, सुनने मे कटु, और समझने में भी भयानक। देखो, पुरुषों ने तुमको कोष और व्याकरण पर अधिक अधिकार दे रक्खा है कि नही?

स्त्री—अच्छा, यह मैं मानती हूं।

कवि—अब गुणों को लो। तुममे कोमलता तो है ही। तुम्हारी वाणी में मिठास है। एक शब्द बोल देती हो। मानो कान मे कोई अमृत बोल देता है। तुम्हारे हृदय में प्रेम है। दिन-भर की मिहनत से चूर थके-मांदे जब हम घर आते हैं और तुम एक बार प्रेम से देखकर मुस्करा देती हो, तब वाह! इतने ही से सारी थकावट दूर हो जाती है। तुम मे दया है, सहिष्णुता है, भोलापन है, लज्जा है, वशीकरण है और मोहिनी कला है।

स्त्री—और पुरुषों में?

कवि—पुरुषों मे युद्ध, विवाद, क्रूरता, अभिमान, छल, डकैती, चोरी आदि।

स्त्री—तुम शायद विधाता को कोसते होगे कि नाहक़ पुरुष हुये ?

कवि—अवश्य। यदि पुरुषों के वश की बात हो तो आज कितने ही सम्पादक, लेखक और समालोचक किसी मारवाडी सेठ की सेठानी बनने को साग्रह तैयार हैं। कितने वकील और बैरिस्टर किसी माल-गोदाम के बाबू की स्त्री बनने को सहर्ष प्रस्तुत हैं। कितने ही कवि, गायक और चित्रकार किसी ज़मींदार के घर की पुरखिन बनने को हाथ जोड़े खड़े हैं।

स्त्री—तुम भी ?

कवि—सबसे पहले।

स्त्री—खैर; मैं तुम्हारी बातों के जाल मे नही पड़ना चाहती। यह तो तुम स्वीकार करते ही हो कि पुरुष बडे झगड़ालु, लड़ाकू, क्रूर और कपटी होते हैं। अतएव, मैं कहती हूँ, इनके हाथ में शासन-सूत्र नही रहना चाहिए। क्योंकि स्वभाव वश ये कभी शान्ति से नहीं रह सकते।

कवि—(गुनगुनाता है—)

नारि सुभाउ सत्य कवि कहही।
अवगुन आठ सदा उर रहही॥
साहस अनृत चपलता माया।
भय अविवेक असौच अदाया॥

स्त्री—(कुढ़कर) पुरुष तो हमेशा ही स्त्रियों की निन्दा किया करते हैं। तुलसी भी तो पुरुष ही थे। अब सब का बदला लिया जायगा।

कवि—(बात बदलते हुये) अच्छी बात है। तुम कौंसिल बनाओ। मै कहे देता हूँ, अपनी चपलता और अविवेक के मारे तुम साल-भर में एक बात का भी निर्णय न कर सकोगी।

स्त्री—(तैश के साथ) देख लेना।

(२)

पहली बैठक

[स्थान—कौंसिल-चेम्बर]

ज्ञान-गर्विता (सभानेत्री)—बहनो ! आज परम सौभाग्य का दिवस है कि हमारा वर्षों का आन्दोलन सफल हुआ। मेम्बरी के लिये जितनी बहनें खडी हुई थीं, उनमे दो को छोडकर शेष सब चुन ली गई हैं। यह हमारे आन्दोलन की सफलता और जनता की रुचि का प्रबल प्रमाण है। जो दो पुरुष आये हैं, उनका मैं हृदय से स्वागत करती हूँ। उनके द्वारा पुरुषों के मनोभावों का पता हमको लगता रहेगा और हम अपने निर्दिष्ट पथ पर सावधानी से चल सकेंगी। बहनों ! हमको अबला बताकर पुरुषों ने हमें धोखे मे डाल रक्खा था। अब हमें दिखला देना चाहिये कि हम अबला नही, प्रबला हैं। अभिमानी और कलहप्रिय पुरुष-जाति से देश का शासन-सूत्र छीनकर हमने अपने हाथ मे लिया है। अब हमें देश में प्रेम और दया का सञ्चार करना चाहिये। बडी (केन्द्रिय) सरकार से हमे अपने प्रांत के लिये एक वर्ष का समय मिला है। एक वर्ष मे हमने अगर शासन की योग्यता प्रमाणित कर दी तो हमें चिरस्थायी अधिकार मिल जायगा। इतना ही नहीं, अन्य प्रांतों मे भी स्त्री-शासन का श्रीगणेश किया जायगा। इस भाषण के साथ मैं आज कौंसिल का कार्यारम्भ करती हूँ।

श्रीमती आलस्य-नन्दिनी—मेरा पहला प्रस्ताव यह है कि सब सरकारी नौकरियाँ केवल स्त्रियों ही को दी जायँ।

श्रीमती सुख-में-पत्नी—मैं इसका विरोध करती हूँ। पहरेदारी, साईसी तथा मेहतर का काम पुरुषों ही से लिया जाना चाहिये।

श्रीमती आलस्य-नन्दिनी—यही क्यों ? धूप में करने के जितने काम हों, सब पुरुषों से लिये जायँ।

श्रीमती मिर्ज़ापुरी लोटिया—ज़रूर। पुरुष कुछ काम न करेंगे, तो उन्हें निकम्मा बनाने का अपराध हमारी सरकार को लगेगा।

श्रीमती निद्रादेवी—पुरुषों ने स्त्रियों से मनु के समय से आज तक इतना काम लिया है कि अब स्त्रियों को आराम करने की छुट्टी मिलनी चाहिये।

सभानेत्री—यह विवादास्पद विषय तीन सदस्यों की एक कमिटी के सुपुर्द किया जाता है। कमिटी की रिपोर्ट आने पर इसपर बिचारा होगा। कमिटी की सदस्यायें श्रीमती सुख-में-पत्नी, श्रीमती मेला-घुमनी और श्रीमती आलस्य-नन्दिनी होंगी।

दूसरा प्रस्ताव

श्रीमती बहु-बोलनी—हिन्दी के पुराने ढर्रे के कवि समाज में दुराचार का प्रचार करते हैं, स्त्री-जाति के गोपनीय विषयों का वर्णन खुल्लम खुल्ला सभाओं में करते हैं; अविवाहिता कन्याओं के साथ व्यभिचार को प्रोत्साहन देते हैं; समाज में विलासिता का प्रचार करके आलस्य, बेकारी, कायरता और शारीरिक निर्बलता की वृद्धि करते हैं। मेरा प्रस्ताव यह है कि ऐसे कवियों के लिए अलग एक कवि-नगर बसाया जाय, जहाँ वे अकेले रहें।

श्रीमती क्षणप्रभा— अकेले से आपका क्या अभिप्राय है ?

श्रीमती बहु-बोलनी—अकेले से मेरा मतलब यह है कि कवि-नगर मे कवियों के सिवा और कोई न रहने पावे।

श्रीमती विद्युल्लता—स्त्रियाँ रहें या नहीं ?

श्रीमती बहु-बोलनी—कवियों ने स्त्रियों को बहुत बदनाम किया है। स्त्रियों ने जहाँ प्रकृति-वश जरा-सा भी हाथ-पैर, आँख, भौं, नाक, ओंठ और कमर को हिलाया-डुलाया कि इन्होंने झट से उसका छन्द बना लिया और फिर उसे लेकर ये दूर तक दौड जाते हैं और गाते फिरते है। दौडकर न अटे तो छपा लिया और डाक से भेजा। आजकल तो इनके डर के मारे हम लोगों का हिलना-डुलना तक बन्द हो गया है। अगर तुम आकाश मे उडते हुये किसी हवाई जहाज़ को टकटकी लगाकर देखने लगो तो ये मुये लिख मारेंगे कि आकाश-गामियों पर तुम कटाक्ष कर रही हो। अगर आँख मूँदकर खड़ी हो तो कहेगे कि किसी यार को याद कर रही हो। ये ऐसे दुष्ट हैं। इनके साथ रहने के लिये कौन-सी कुनारी तैयार है ? मैं यह जानना चाहती हूँ।

श्रीमती कलह-प्रिया—मैं 'कुनारी' शब्द पर आपत्ति करती हूँ। मान लीजिये कि कोई 'सुनारी' अपने कवि पति को सुधारने के लिये कवि-नगर मे रहे तो उसे 'कुनारी' क्यों कहना चाहिये ? श्रीमती बातूनी यह शब्द वापस लें।

श्रीमती बहु-बोलनी—मैं शब्द वापस लेने को तैयार नहीं हूँ। कवियों के साथ किसी 'सुनारी' को रहना ही नहीं चाहिये। जो रहेगी, वह अवश्य 'कुनारी' कही जायगी।

श्रीमती ज्वालामुखी—इस कु, सु के झगड़े को जाने दीजिये। मैं इस प्रस्ताव मे यह संशोधन पेश करती हूँ कि कवि-नगर में रहनेवाले कवियों को एक-एक भैंस दे दी जाय। कवि लोग अपनी-

अपनी भैंसें चरायेंगे, इससे उनको हमारी शिकायतें लिखने का मौक़ा कम मिलेगा। भैंस का दूध पियेंगे, इससे उनकी प्रतिभा भी मन्द पड़ जायगी। और सबसे बड़ा लाभ तो यह है कि भैंस का रङ्ग-रूप देखकर उनमें कविता करने की इच्छा ही उत्पन्न न होगी।

श्रीमती कलह-प्रिया—ज्वालामुखी ने मेरे साँवले रंग और स्थूल शरीर को लक्ष्य करके भैंस शब्द कहा है। मैं इस मुँहझौंसी को इसका मज़ा चखाऊँगी।

श्रीमती ज्वालामुखी—रॉँड़, पूतखई, कुलटा, मैंने तुझे कब भैंस कहा?

(दोनों झपटकर भिड़ जाती हैं।)

श्रीमती कलह-प्रिया—देखो, मेरी चोटी पकड़कर खींच रही है।

श्रीमती ज्वालामुखी—इसने मेरे मुँह में एक तमाचा मारा!

श्रीमती कलह-प्रिया—इसने मुझे ढकेल दिया!

श्रीमती ज्वालामुखी—इसने मेरी साड़ी फाड़ डाली!

श्रीमती कलह-प्रिया—इसने दाँत से मेरी अँगुली चबा ली!

(सभानेत्री ने उठकर दोनों को छुड़ाया और अलग-अलग बैठा दिया। दोनो एक दूसरे को आँखें गुरेरती हैं।)

श्रीमती बिड़ालाक्षी—मुझे डर लगता है; मैं भागती हूँ।

श्रीमती निद्रादेवी—कैसा अच्छा स्वप्न देख रही थी। इन दोनों चुड़ैलों ने सब गड़बड़ कर दिया।

श्रीमती मिर्ज़ापुरी लोटिया—दोनों ख़ूब गुत्थमगुत्था हो रहीं थीं। लड़ने देतीं। चली है हुकूमत करने। पुरुषों की चौथाई भी सहनशीलता स्त्रियों में नहीं है। भला, कभी किसी ने सुना है कि कौंसिल मे पुरुषों ने ऐसी हाथा पाई की थी?

श्रीमती मदालसा—सभानेत्री महोदया ! आज की बैठक स्थगित कीजिए।

सभानेत्री—बड़े खेद की बात है कि हम लोग किसी बात का विचार नही कर सकतीं। मैं कौंसिल का यह अधिवेशन तीन महीने के लिए स्थगित करती हूँ।

(३)

दूसरी बैठक

[स्थान—कौंसिल-चेंबर]

सभानेत्री—कोरम पूरा न होने से कौंसिल का यह अधिवेशन स्थगित किया जाता है।

सेक्रेटरानी—सदस्याओं के आये हुए पत्रों के खुलासे पढ़कर सुनाती हूँ—

सभानेत्री—हाँ।

आलस्य-नन्दिनी—बरसात में घर छोड़ने को जी नही चाहता, इससे मैं नहीं आ सकती।

कलह-प्रिया—पहले अधिवेशन मे जो अप्रिय काण्ड हुआ है, उससे कौंसिल से मेरी अरुचि हो गई है।

ज्वालामुखी—मैं कलह-प्रिया के साथ एक सभा में नहीं बैठ सकती।

सुख-मे-पली—सावन में हिंडोले की बहार छोड़कर कौंसिल मे कौन आवे !

बिड़ालाक्षी—बरसात-भर मैं अपने पिता के घर रहती हूँ।

बहु-बोलनी—मैं कवियों के विरुद्ध प्रान्त-भर मे घूम-घूमकर आन्दोलन करने जा रही हूँ।

मेला-घुमनी—बरसात मे तीर्थों मे बड़े-बड़े मेले लगते हैं,

जिनमे स्त्रियाँ बहुत जाती हैं। मैं मेलों में घूम-घूमकर स्त्री-जाति की वर्तमान दशा का अध्ययन करूँगी। इससे कौंसिल के इस अधिवेशन मे नहीं आ सकती।

सभानेत्री—बस करो, मैंने देख लिया कि स्त्रियाँ केवल बक-वाद कर सकतीं हैं, काम नही कर सकतीं।

(४]

तीसरी बैठक

[स्थान—कौंसिल-चेम्बर]

सभानेत्री—मुझे बड़ा हर्ष है कि आज कौंसिल की कुल सदस्यायें उपस्थित हैं।

श्रीमती विनोदिनी—दो सदस्य भी हैं।

सभानेत्री—मैं देख रही हूँ। पर मैं चाहती हूँ कि ये भी सदस्यायें होतीं।

एक सदस्य—हम लोग पुरुषों के प्रतिनिधि-स्वरूप रह गये हैं।

सभानेत्री—अब कौंसिल की कार्यवाही प्रारम्भ की जाती है। प्रान्त के शासक का पत्र मै कौंसिल के सम्मुख उपस्थित करके आशा करती हूँ कि इसपर पूरा ध्यान दिया जायगा। पत्र में उल्लिखित विषय का सारांश यह है कि सीमा-प्रान्त पर युद्ध छिड गया है। वहाँ के लिये सैनिक चाहिये। अतएव सैनिकों की एक अच्छी संख्या भेजने के लिये कौंसिल प्रचुर धन की माँग स्वीकार करे। देश की रक्षा के लिये जल्दी-से-जल्दी कार्यवाही होनी चाहिये।

श्रीमती बहु-बोलनी—प्रश्न यह है कि सैनिक स्त्री हों या पुरुष ?

श्रीमती नरान्तिका—सेना स्त्रियों की भेजी जाय।

श्रीमती बहु-बोलनी—युद्ध की कोई आवश्यकता नहीं। युद्ध करना पशुता है। यह पुरुषों का काम है। स्त्रियों का एक डेपुटेशन सीमा-प्रांत पर आक्रमण करनेवाले शत्रुओं की स्त्रियों के पास भेजा जाय कि वे अपने-अपने पतियों को युद्ध करने से रोकें।

एक सदस्य—मैं यह बता देना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ कि सीमा-प्रान्त के लोग ऐसे उद्धत हैं कि डेपुटेशन का डेपुटेशन हज़म कर जायँगे और उनकी स्त्रियों को ख़बर भी न पहुँचेगी।

श्रीमती डरपोकनी—मैं तो डेपुटेशन मे नहीं जाऊँगी।

सभानेत्री—क्या इसी साहस पर हमने पुरुषों से अधिकार लिया है?

श्रीमती मिर्ज़ापुरी लोटिया—मेरी राय है कि स्त्रियों की एक बड़ी सेना भेजी जाय।

श्रीमती निद्रादेवी—और सेनापत्नी आपको बनाया जाय?

श्रीमती मिर्ज़ापुरी लोटिया—मैं सभापत्नी महोदया का ध्यान निद्रादेवी के अश्लील व्यंग्य की ओर आकर्षित करती हूँ।

सभानेत्री—आप तो स्वयं उसी प्रकार का अपराध कर रही हैं, जिसका प्रतिवाद कर रही हैं।

श्रीमती बहु-बोलनी—स्त्रियों ही की सेना भेजी जाय, इसीमे स्त्री-जाति का गौरव है। पर वे युद्ध कैसे करेंगी?

दूसरा सदस्य—कटाक्षों से।

सब सदस्यायें—(उठकर एक स्वर से) इन दोनों पुरुषों को कौंसिल से निकाल दो। ये स्त्री-जाति का अपमान करते हैं।

दोनों—(चलते हुये) अच्छा हुआ कि हम लोग स्वयं उठ आये, नहीं तो इन भूतनियों की हस्त-संचालन-क्रिया से हमारी दुर्गति हो जाती।

(५)

[स्थान—कवि का शयनागार]

कवि—कहो, कौंसिल मे क्या हुआ ?

स्त्री—एक वर्ष मे तीन अधिवेशन हुए। सचमुच एक भी बात का निर्णय हमलोग न कर सकीं। सीमा-प्रान्त के शासक ने सीमा के युद्ध मे लड़ने के लिये धन और जनता की सहायता माँगी। लगातार एक महीने तक बैठकें करके भी हम यह निर्णय न कर सकी कि सेना पुरुषों की भेजी जाय या स्त्रियों की। अन्त मे बड़ी सरकार ने स्त्रियों की कौंसिल तोड़ देने का हुक्म भेज दिया।

कवि—चलो, छुट्टी हुई।

स्त्री—सचमुच हम लोगों ने नाहक़ एक झगड़ा सिर पर उठा लिया था।

कवि—मेरी प्यारी हृदयेश्वरी ! तुम घर ही पर रहो। कौंसिल मे जाकर तुम शुद्ध प्रेम के बदले मिथ्या सहानुभूति प्रकट करना और सत्य के स्थान पर वाक्छल सीखोगी; हृदय की निर्मलता के बदले मनोहर बाह्याडम्बर का ज्ञान प्राप्त करोगी; सेवा-भाव के स्थान मे तुममे स्पर्द्धा और निन्दा की प्रवृत्ति जाग उठेगी; और तुम्हारे नेत्रों मे जो माधुर्य है, उसका स्थान धूर्त्तता ले लेगी। मेरी प्रियतमे ! मेरे हृदय की मणि ! तुम मेरी स्वर्ग ऐसी गृहस्थी को नरक न बनाओ। तुम देश की सेवा करना चाहती हो, तो देश को बलिष्ठ, तेजस्वी और शिक्षित संतान प्रदान करो :

स्त्री—और कवियों ने जो हमारी दुर्गति की है, उस सम्बन्ध में तम्हारी क्या राय है ?

कवि—इस सम्बंध मे मैं तुम्हारे पक्ष मे हूँ। पर अन्तर इतना है कि उन्होंने द्वेष-वश नहीं किया, मोह और लोभ-वश किया है। इसका दंड वे पा गये। देश रसातल को चला गया। उनके आश्रय-दाता पराधीन और पद-दलित हो गये। अब उनको पूछनेवाला कोई नहीं रहा। अब वे अपनी कवितायें छपवाते हैं और गा-गाकर लोगों को रिझाते और किसी तरह पेट पालते है।

स्त्री—पर लत तो वे पुरानी ही पकड़े हुये हैं।

कवि—नही, नहीं; आजकल तो देश-प्रेम और समाज सुधार-जैसे सात्विक विषयों की कवितायें हो रही हैं। पुराने ढर्रे के कवियों का तो अब मज़ाक उड़ाया जाता है।

स्त्री—तुम नये कवियों की कई पुस्तकें ख़रीद लाये थे। मैं उन्हें पढ़ गई। उनमे तो वैसी ही अश्लील बातें भरी पड़ी हैं, जिनके लिये पुराने कवि बदनाम किये जाते हैं। मैं पूछती हूँ कि हमारे तुम्हारे बीच की बात को गली-गली गाते फिरना या पुस्तकों मे छपवाकर सबको पढ़वाते फिरना कहाँ की शिष्टता है? और किसी कवि को ऐसा करने का क्या अधिकार है?

कवि—(हँसकर) तुमने क्या पढ़ा? सुनाओ तो सही।

(स्त्री दूसरे कमरे में जाकर कुछ पुस्तकें उठा लाती है और एक-एक को बारी-बारी से खोलकर पढती है।)

गुञ्जन—

नयन से नयन गात से गात
पुलक से पुलक प्राण से प्राण
भुजों से भुज कटि से कटि शात
आज तन-तन मन-मन हो लीन।

अनामिका—

दूर देश की कोई वामा
आये मद चरण अभिरामा।
उतरे जल में अवसन श्यामा
अंकित उर छवि सुन्दरतर हो।

भला, बताओ, नग्न स्त्री को स्नान करती हुई देखना कितने शर्म की बात है! कवि ने मानो लाज-शर्म सब धोकर पी लिया है। फिर ये लोग ब्रज-भाषा के कवियों की निन्दा क्यों करते हैं?

कवि—जाने दो। नये कवियों में ज़्यादातर रँडुवे और क्वाँरे ही हैं। इसे भगवान् की कृपा ही समझो कि वे दिमागी ऐयाशी ही तक रुके हुये हैं। वे किसी तरह, शिष्ट तरीक़े पर, रस की बातें कह-सुनकर जी की कसक निकालते रहते हैं; नहीं तो छापा मारते फिरते न?

छायावादी कवि और चित्रकार

[एक मकान की छत पर छायावादी कवि किसी चिन्ता में निमग्न, सिर झुकाये हुये, धीरे-धीरे टहल रहा है। नीचे कोई साँकल खटखटाता है।]

कवि—कौन है ?

आवाज—मैं हूं, चित्रा।

कवि—[मुँडेर पर झुककर और नीचे की ओर झाँककर] ओहो ! चित्रा बाबू ! आइये, साँकल खुली है। केवाडे ओठँगाकर ऊपर आ जाइये।

[नीचे से केवाड़ों के खुलने और फिर बन्द होने की आवाज़ आती है। सीढ़ियों पर चित्रा बाबू के पैरों की ध्वनि सुनाई पड़ती है। चित्रा बाबू छत पर आते हैं। दोनों ओर हाथ जोडकर प्रणाम करने की क्रिया होती है।]

चित्रा बाबू—[कवि के बिछौने के एक कोने पर बैठते हुये] कल तुम चित्रों की प्रदर्शिनी देखने नहीं आये ?

कवि—[मुसकुराकर] कल एक कविता बनाने में लग गया।

चित्रा बाबू—[उत्सुकता से] सुनाओ, सुनाओ, कहाँ है वह नई कविता ?

कवि—पहले तुम प्रदर्शिनी का हाल सुना दो, तब मैं कविता सुनाऊँगा। तुम्हारे चित्र कैसे पसंद किये गये ?

चित्रा बाबू—[कुछ निरुत्साह-सा प्रकट करते हुये] समझदारों ने तो बहुत पसंद किया; पर ज़्यादातर लोगों की आँखे अभी

रंगों ही की चमक दमक पर जाती हैं। दर्शकों मे अंतर्दृष्टि का अभी बडा अभाव है।

कवि—यही अभाव तो हमारी कविता के मार्ग मे भी बाधा डाल रहा है।

[नीचे से कोई फिर साँकल खटखटाता है। दोनों मुँडेर के पास खड़े होकर नीचे झाँकते हैं।]

चित्रा बाबू—[कवि से, धीरे से] ये कहीं के कोई बड़े रईस है। कल चित्र-प्रदर्शिनी मे आये थे। शायद तुम से मिलने आये हैं। देखना, मेरा परिचय न देना। चित्रों पर मैं इनकी निष्पक्ष राय सुनना चाहता हूँ। मै जाकर लिवा लाता हूँ।

[जाता है।]

कवि—[नीचे की ओर झाँककर] ठहरिये, दरवाज़ा खोलने के लिये जा रहे हैं।

[कवि ने बिछौने की चादर खीच-खाँचकर ठीक कर दी। इधर-उधर बिखरें हुये कागज के टुकड़े भी चुनकर बाहर फेक दिये। रुमाल से मुँह पोंछकर, अँगुली से सिर की लटें टोकर देख लीं और कुछ को कानो के पिछवाडे तक पहुँचा भी दिया।]

[चित्रा बाबू के साथ रईस का प्रवेश]

रईस—[कवि को प्रणाम करके] आपकी कवितायें पढ़कर आपके दर्शनों की मेरी बहुत दिनों से उत्कंठा थी। भगवान ने आज पूरी की।

कवि—आप बड़े भाग्यशाली हैं। आइये, बैठिये।

[कवि रईस को बिछौने के सिरहाने बैठने के लिये हाथ से सकेत करता है। पर रईस वहाँ न बैठकर एक किनारे बैठ जाते

हैं। दूसरे किनारे कवि और तीसरे किनारे चित्रा बाबू बैठ जाते हैं।]

चित्रा बाबू—[रईस से] कल मैने आपको चित्र-प्रदर्शिनी में देखा था।

रईस—[चित्रा बाबू को देखकर] कल क्या आप भी वहाँ गये थे?

चित्रा बाबू—जी हाँ, मैं भी एक दर्शक था। कहिये, छायावादी चित्रों को आपने कैसा पसंद किया?

रईस—[कवि से, चित्रा बाबू की ओर इशारा करके] आपका परिचय?

कवि—आप मेरे एक मित्र है। कला विशेषज्ञ हैं।

रईस—[चित्रा बाबू की ओर हाथ जोडकर] क्षमा कीजिएगा; देहात मे और घर-गृहस्थी के झँझटों मे फँसे रहने के कारण अपने रत्नों से परिचित होने का सौभाग्य मुझे अभी तक नहीं मिला था, मुझे बड़ा खेद है। [कवि से] कल यहाँ आने के मेरे दो ही उद्देश्य थे, चित्र प्रदर्शिनी देखना और आपके दर्शन करना। आपके यहाँ एक कला-विशेषज्ञ से और परिचय हो गया। अधिकस्याधिकं फलम्। कल चित्र-प्रदर्शिनी देख ली, आज आप से मिलकर गाँव को वापस जाऊँगा।

चित्रा बाबू—धन्यवाद! आप-सरीखे गुण-ग्राही रईस अब बहुत कम दिखाई पडते हैं। [उत्सुकता से आँखें और भौ मटकाकर] कहिये, कल चित्र-प्रदर्शिनी मे आपको कौन से चित्र पसन्द आये?

रईस—पुराने ज़माने के कुछ चित्र थे, मुझे तो वे ही पसंद आये।

चित्रा बाबू—नये चित्रों के बारे मे आपकी क्या राय है?

रईस—नये चित्र कौन से ?

चित्रा बाबू—वही, जिसे "बंगाल आर्ट" कहते है।

रईस—[हँसकर] मैं उन्हें 'आर्त्त बंगाल' के चित्र कहता हूँ। उन्हें 'छायावादी चित्र' न कहकर 'मलेरिअल पिक्चर्स' (Malerial Pictures) कहना अधिक युक्ति-संगत होगा।

[रईस और कवि हँसते हैं। चित्रा बाबू कुछ अप्रतिभ-से होकर केवल शिष्टाचार-वश ज़रा-सा हँस देते हैं।]

चित्रा बाबू—आपकी धारणा ऐसी क्यों है ? आज-कल तो वैसे ही चित्रों को कला का शुद्ध रूप माना जा रहा है।

रईस—[किसी तत्व-दर्शी की तरह गंभीर मुख-मुद्रा से] देखिये साहब, काव्य-कला कान और हृदय का विषय है। कान के लिए उसमें मधुर छंद हैं और हृदय के लिए मनोहर भाव। इसी तरह चित्र-कला आँख और हृदय का विषय है। चित्र में आँख के लिये भी कोई आकर्षण होना चाहिये और हृदय के लिए तो उसमे होता ही है। 'आर्त्त बंगाल' के चित्रों में आँख के लिए तो कुछ होता ही नहीं; केवल हृदय के लिये उनमें भाव-व्यंजना बताई जाती है।

चित्रा बाबू—[दर्प के साथ हथेली से बिछौने पर चोट करके] बताई नहीं जाती है जनाब, है। उनको देखने के लिए भावुक हृदय चाहिये।

रईस—[मुसकुराकर] ज़रा ठहरिये; मैं बताई जानेवाली बात पर भी आता हूँ। हाँ तो, बंगाल की तरह सारे देश में तो मलेरिया फैला नहीं हैं। इस देश मे हज़ारों-लाखों स्त्री-पुरुष हृष्ट-पुष्ट भी हैं। लाखों क्या, क़रोड़ों वर्षों से उनमें प्रायः सभी प्रकार के भाव भी व्यंजित होते रहे हैं। क्या उनके सुन्दर शरीर के साथ भावों का प्रदर्शन नहीं किया जा सकता ?

चित्रा बाबू—वे चित्र भाव-प्रधान ही होते हैं। रंगों के दिन अब गये।

रईस—दिन तो फिर आ जायँगे। और वह दिन तो नज़दीक ही है, जब आप ही का वाक्य इस तरह कहा जायगा कि 'छायावादी चित्रों के दिन गये।' मैं यह जानना चाहता हूँ कि जब आँखों ही से हृदय कला का रस पान करता है, तब क्या आँखों को कुछ भी आहार नहीं देना चाहिये?

कवि—[दोनों का विवाद शांत करते हुये-से, रईस से] ज़रूर देना चाहिये, लेकिन हृदय का महत्व आँखों से अधिक है। मगर उन चित्रों में आप क्या त्रुटियाँ देखते हैं?

रईस—[कुछ उत्तेजित स्वर मे] त्रुटियाँ? सब से बड़ी त्रुटि तो यह है कि जिन व्यक्तियों के नाम पर वे चित्र बनाये जाते हैं, उनके शरीर का जैसा चित्रण किया जाता है, वह सर्व-साधारण की धारणा के विपरीत होता है।

कवि—जैसे?

रईस—जैसे, भीम, अर्जुन और कामदेव के चित्रों को लीजिये, जो कल प्रदर्शिनी में थे। वे कितने भद्दे थे! किसी की नाक गाजर की फाँक-जैसी, किसी के हाथ-पैर सींक-जैसे, किसी के पाँव और अँगुलियाँ गोरीला-जैसी, भला बताइये, किसे सुन्दर लग सकते हैं! भीमसेन का शरीर खूब मोटा-ताजा बनाया जाता, उसमें अकड़ और ऐंठ भी काफ़ी दिखाई जाती, जैसा समाज की आँखों मे चित्रित है, और फिर उसमे भाव झलकाये जाते तो क्या वह कला का एक सुन्दर प्रदर्शन न होता?

चित्रा बाबू—[बात का रुख बदलने के लिये] हालदार बाबू के चित्र आपको कैसे पसंद आये?

रईस—हालदार बाबू से मेरी जान-पहचान है। किसी दिन

मिलूँगा तो कहूँगा कि आप दूसरों के भावावेश के चित्र बनाते हैं, एक दिन अपना भी बनाइये। जिस मे यह दिखलाइये कि जब आप चित्राङ्कण के समय भावावेश मे होते हैं, तब आप की सूरत-शकल कैसी हो जाती है, और फिर उसे अपनी श्रीमती को भी दिखलाइये।

कवि—[मुसकुराकर] श्रीमती को क्यों दिखलाये ?

रईस—वही उनकी कला का मूल्य चुकायेगी। कूँची-फूँची और प्याली-साली तोडकर फेंक देंगी और कहेगी कि मेरे पति ऐसे कुरूप नहीं हैं।

[कवि जोर से हँस पडता है।]

चित्रा बाबू—[कुछ झेंपते हुये, धीरे से] अपनी-अपनी पसंद है।

रईस—[ज़ोर देकर] निश्चय। पर जब आप अपने घर में रहे, तब अपनी पसंद से जो चाहे करें, बाज़ार मे आयेंगे तो दूसरों की पसंद का ध्यान रखना ही पडेगा।

कवि—लेकिन अब तो यह धारा किसी हद तक जाकर ही रुकेगी।

रईस—(हँसकर) हाँ, यदि मनुष्य-मूर्ति का वीभत्स चित्र बनाने के अपराध के कारण चित्रकारों पर कुढ़कर ब्रह्मा यह करने लगें कि चित्रकार किसी स्त्री का जैसा चित्र बनायें वैसी ही सूरत-शकल उनकी स्त्री की भी वे कर दे, तो शायद ही कोई चित्रकार छायावादी चित्र बनाने का साहस करे।

कवि—[हँसकर, चित्रा बाबू की ओर देखकर, रईस से] आप सच कहते हैं।

रईस—और अजीब ढकोसला तो छायावादी चित्रों के प्रशंसकों ने फैला रक्खा है। मैंने कइयों से पूछा—क्यों साहब, इस

चित्र मे क्या खूबी है? सब ने एक ही रटा हुआ-सा जवाब दिया—ये चित्र चुपचाप समझ लेने के है। एक साहब हरएक चित्र पर लट्टूपन दिखला रहे थे। मैंने समझा, ये कोई कला-विशेषज्ञ हैं। मैने उनसे दो-तीन बार कहा कि मैं नहीं समझ रहा हूँ, कृपा कर मुझे भी समझाते चलिये। अत मे मुझसे ऊबकर उन्होंने सच्ची बात उगल ही दी।

कवि—[उत्सुकता से] उन्होंने क्या कहा?

रईस—उन्होंने कहा कि साहब मै भी नही समझता, पर मूर्ख कौन कहलाये? तारीफ करने से चित्रकार तो ख़ुश रहते ही है, दूसरे लोग भी समझते हैं कि मैं बहुत समझदार हूँ। मुझे घाटा क्या है? इस तरह मैने देखा कि छायावादी चित्रकारों ने बहुत से सुंदर-सुंदर, होश हवास-दुरुस्त और शिक्षित कहे जानेवाले पुरुषों को भी बेवक़ूफ बना रखा है, और मज़े की बात तो यह कि उनसे बेवकूफ बने हुओं ने अपनी बेवकूफी पर ऐसा खूबसूरत परदा भी चढ़ा लिया है कि सब उनको कलाविद् समझने लगे। उन पर खुद पर कला का आतङ्क छाया हुआ है और उन्होंने दूसरों पर आतंक फैला रक्खा है। इस अन्दरूनी आतङ्क का तमाशा मुझे छायावाद के प्रत्यक्ष चित्रों से कही ज़्यादा मज़ेदार मालूम हुआ।

[कवि चित्रा बाबू के चेहरे पर दृष्टि डालकर जोर से हँस पडता है। चित्रा बाबू के ओठों पर झेप की हँसी फैल जाती है।]

रईस—[कवि से] अच्छा साहब,

आये थे हरि भजन को, ओटन लगे कपास।

मैं तो आपकी 'छायावादी कविता' सुनने आया था। समय बहुत हो गया, अब कृपा करके कुछ सुना दीजिये।

चित्रा बाबू—छायावादी कविता के बारे में आपके क्या विचार हैं ?

रईस—मैं तो उसे समझता ही नहीं, विचार क्या करूँ ?

चित्रा बाबू—आखिर आप पढ़ते तो होंगे ही ।

रईस—पढ़ता तो ख़ूब हूँ; पर पता नहीं चलता कि क्या पढ़ता हूँ । इतना तो स्पष्ट देखता हूँ कि पुरानी नायिकाओं से अभी-अभी हमारा पिंड छूटा ही था कि झुण्ड की झुण्ड सजनी, प्रेयसी, सुमुखी, सहचरी और प्राण सामने आ खड़ी हुईं ।

चित्रा बाबू—ये तो मनुष्य-जीवन की सहचरियाँ हैं । इनसे तो प्रलय तक पिंड न छूटेगा ।

रईस—सच है; लेकिन तब नायिका-भेद क्या बुरा था ?

कवि—बुरा नहीं था, असामयिक है । पहले जो नायिकायें थीं, वे ही अब सहचरियाँ हैं ।

रईस—फिर नखशिख-वर्णन क्यों छोड़ दिया गया ?

चित्रा बाबू—गर्दन के ऊपर के अंगों के वर्णन तो अब भी होते हैं, नीचे ही के नहीं होते ।

रईस—क्यों ?

चित्रा बाबू—[हँसकर और कवि की ओर देखकर] क्योंकि छायावादी कवियों को उतना सहज में उपलब्ध है ।

रईस—मैं समझा नहीं ।

चित्रा बाबू—छायावाद के जितने सुप्रसिद्ध कवि हैं, सब के नाम गिन डालिये और फिर यह पता लीजिये कि उनमें कितने अवधू अर्थात् अविवाहित हैं और कितने विधुर । अधिकांश अवधू और विधुर ही आपको मिलेंगे । इससे पूरा नख-शिख अब उनका विषय ही नहीं रहा । वे गर्दन के ऊपरी अंगों ही से 'करेंट'

लेकर आकाश में उड़ जाते हैं और सजनी और प्रेयसी की मधुर स्मृतियों मे मस्त होकर तारागणों, चन्द्र-किरणों, उषा और मलय वात मे विहार करते रहते हैं। कभी-कभी, भूले-भटके, पृथ्वी पर भी आ जाते हैं और शेफाली, जपाकुसुम और बकुल के पास घूम-घामकर फिर गगन-मण्डल मे लौट जाते हैं।

रईस—[आँखों से समझने का भाव दिखाकर] हाँ—अ; तभी वेदना, टीस और कसक ही की गूँज उनके स्वरों मे सुनाई पड़ती है।

चित्रा बाबू—अब आप समझ गये।

रईस—खूब अच्छी तरह।

कवि—[चित्रा बाबू की ओर कटाक्ष करके] खूब बदला चुका रहे हो।

[चित्राबाबू जरा मुस्कुराकर चुप रहते हैं]

रईस—मगर साहब, छायावादी कवियों की बातें बड़े बेसिर-पैर की क्यों होती हैं।

चित्रा बाबू—विरह और वेदना से व्यथित व्यक्ति के मुँह से समझ में आनेवाली बात निकले तो उनकी असलियत मे फ़र्क़ आ जाय न ?

[कवि मुस्कराहट-भरी आँखों से चित्रा बाबू को देखता है। रईस नीची आँखें करके कुछ सोचने लगते हैं।

रईस—[कवि से] अच्छा, अब आप कुछ अपनी कविता सुनाइये।

कवि—[तकिये के नीचे से कापी निकालकर] सुनिये, यह 'जूँ' नाम की कविता मैंने आज ही रात मे लिखी है। भाव यह है कि अमावास्या की घोर अँधेरी रात का काला आकाश आकाश नहीं, बल्कि प्रियतमा का फैला हुआ केश है। प्रियतमा अँगुलियों

से बाल ब्योर रही है। उससे केश में जो छिद्र हो जाते हैं, उनसे स्वर्ग की झलक दिखाई पड़ती है, जिसे गँवार लोग तारे कहते हैं।

रईस—ओह! बडी सुन्दर कल्पना है।

चित्रा बाबू—और कवि प्रियतमा के कंधे पर, केशों की छाया में, जूँ की तरह खड़ा होकर स्वर्ग का दर्शन कर रहा है।

रईस—[बड़ी उत्सुकता से] अब ज़रा कविता सुना दीजिये। [हँसकर] उतने बडे केश की छाया मे तो कवि सचमुच जूँ-जैसा ही लगेगा।

कवि—[प्रसन्न होकर] यही भाव तो मैंने बाँधा ही है। प्रियतमा के केश का जूँ होना असाधारण पुण्य का फल है।

चित्रा बाबू—और उसकी चोली का चीलर या पलङ्ग का खटमल होना?

कवि—[कुढ़कर] तुम्हारा सिर। [रईस से] अच्छा साहब, सुनिये—

[कवि गाकर सुनाता है।]

सजनि! तुम्हारे केशों की
छाया में खडा हुआ यह जूँ
है देख रहा अपलक प्रेयसि! तुम
ब्योर रही हो बाल

मनोहर बाल।
दिखाई पड़ता है वह स्वर्ग,
जिन्हें उडुगण कहते हैं अबुध।
अहा! कैसा सुन्दर है स्वर्ग!
मदिर, नीरव, निस्तब्ध!

*

स्वर्ग का वातायन वह चन्द्र,
खुला क्यों नहीं आज, हे मधुर !
जान पड़ता है करके बन्द
स्वर्ग के अवधू और विधुर
स्वर्ग की कलिकाओं के साथ
अलौकिक क्रीड़ा में हैं निरत।
अहा ! कैसा मधुमय है स्वर्ग !

*

झनक उठते हैं बिना प्रयास,
हृदय में हृत्तंत्री के तार !
मूक आमन्त्रण-सा कुछ, सुमुखि !
मिला करता है बारम्बार।
किन्तु साहस होता ही नहीं।
स्वर्ग जितना है सुमधुर, प्रिये !
मार्ग उतना ही है विकराल।

*

बड़ी इच्छा होती है, कुसुम !
उतरकर ग्रीवा से अनजान
तुम्हारे अंगों का सौन्दर्य
देख कुछ सुख का अनुभव करूँ,
किन्तु भय से उठता हूँ सिहर।

*

उधर ही कहीं तुम्हारे युगल
अँगूठों के मंजुल अरुणाभ
नखों के मध्य स्वर्ग का द्वार
सदा रहता है मुक्त-कपाट।
काँपने लगता हूँ म्रियमाण,
भयंकर हैं वे नख, हे प्राण !

रईस—वाहवा, बडी ही ललित कविता है। इतनी मधुर तुक-हीन कविता मैंने आज तक नहीं सुनी थी।

कवि—[नम्रता प्रकट करते हुये, दोनों हाथ जोड़कर] मुझे बड़ी प्रसन्न .' है कि आप को यह मेरी तुच्छ रचना पसन्द आई। आप बड़े सहृदय हैं।

रईस—पर अन्य छायावादी कवियों की कविता तो मेरी समझ मे नहीं आती। कुछ तो वे जान-बूझकर शरारत करते हैं, और ऐसा अटपट जोड-तोड़ मिलाते हैं कि सुननेवाले भौचक से रह जाते हैं। रंग-बिरंगे कतरनों के टुकडे जोडकर एक ऐसी अजीब-सी कथरी वे सी देते हैं कि कुछ समझ ही मे नही आता कि वह क्या है। छायावादी कवियों से मिलने का सौभाग्य मुझे अक्सर प्राप्त हुआ है। उनसे जब उन्हीं की कविता का अर्थ पूछा, तो उन्होंने कहा—समझनेवाले समझेंगे; मैंने तो जो दिमाग़ से उतरा, लिख दिया। गोया उन्हे इलहाम होता है। उनके प्रशंसकों से पूछा, तो उन्होंने कहा—गूँगे का गुड़ है।

चित्रा बाबू—छायावादी चित्रों का-सा आतंक छायावादी कविता मे भी फैला है।

रईस—[सहमत होने का भाव प्रकट करते हुये] आप सच कहते हैं। कवि खुद अपनी कविता का अर्थ नहीं समझते और प्रशंसा करने वाले डरते हैं कि समझने से इन्कार करने पर कही वे मूर्ख न समझ लिये जायँ। इस तरह एक अजीब-सा आतंक छाया हुआ है, और समझदारों मे गिनती कराने के लिये न समझने वालों ही की संख्या बढ़ती जा रही है। और उनकी ढिठाई तो देखिये, छायावादी कविता न ख़ुद समझते हैं न समझा सकते हैं; लेकिन जब कोई जिज्ञासु पूछ बैठता है तब ज़रा मुसकु-

राकर, उसके मुँह पर दृष्टि गड़ाकर, ऐसा अभिनय करते हैं, मानो उसके अज्ञान पर तरस खा रहे हैं। इस निर्भयता की बलिहारी !

चित्रा बाबू—तब उन्हे आतंकवादी कवि कहना चाहिये।

रईस—[गंभीरता से] आप ठीक कहते हैं; छायावादी या रहस्यवादी से यह नाम ज़्यादा सार्थक है।

कवि—सरस कबिन के हृदय को, बेधत है सो कौन।
असमझवार सराहिबो, समझवार को मौन ॥

रईस—पर छायावादी कवि को तो इस का यह पाठांतर प्रिय लगेगा—

छायावादी कबिन को, मोहत है सो कौन।
असमझवार सराहिबो, समझवार को मौन ॥

[चित्रा बाबू ठहाका मारकर हँसते हैं। कवि का मुँह कुछ उतर जाता है।]

रईस—[कवि से] अच्छा, अब तो आज्ञा दीजिये। आपके साथ इतनी देर तक बड़ा आनन्द आया।

[रईस के साथ कवि और चित्रा बाबू उठ खड़े होते हैं। रईस को मकान के बाहर तक पहुँचाकर दोनों फिर छत पर वापस आते हैं।]

कवि—तुमने तो आज करारा बदला लिया।

चित्रा बाबू—तुमने भी छिपे-छिपे कम वार नहीं किये।

कवि—ख़ैर; रईस तो बड़ा घुटा हुआ जान पड़ता है।

चित्रा बाबू—[सिर हिलाकर और नाक पर जोर देकर] हूँ—अ; हम दोनों को गहरी मार मारकर गया है।

[चित्रा बाबू उठकर जाते हैं। कवि बिछौने पर बैठकर रईस की बातों की लड़ी जोड़ने में लग जाता है।]

मुंशी मनबोधलाल

[निराला छंद]

गौरव का वह दिन,
आ गया बुलाये बिन,
जिस दिन
जीवन में पहली ही बार,
मानस के गुटके को
बारबार चूम
कमरे में घूम
सोचते थे बात कोई
बहुत रसाल;
मुंशी मनबोधलाल ।

*

सोचते थे, आज
बड़े साहब के पैर पड़
कहूँगा कि साहब,
बढ़ाओ मेरी तनख़्वाह;
कटती नहीं है राह ।
झटपट आइने मे
बारबार घूर-घूर
भावना में चूरमूर

सिर के सँवारे बाल,
पहना निकाल
नया रेशम का अचकन,
टाँगों मे सफेद धुला चूड़ीदार कसकर
काग़ज़ के बक्स से निकाले नये
काले बूट
इसी दिन के लिए ख़रीदा था महीनों हुए,
ऐसे श्याम जैसे मिसी लगे दाँत कामिनी के।
पोंछ-पाँछ दोनों चरणों को पहनाया
और,
फीते कसकर
कुछ गर्व अनुभव किया।
बूट और मुख मे अधिक श्याम कौन था?
यह बतलाना सचमुच ही कठिन था।
दोनों ओर मैचिस की तीली मे मसाला लगा
ऐसे थे बुझी मसाल
मुंशी मनबोधलाल।

खड़े हुए तनकर,
ख़ूब बन-ठनकर,
फिल्ट कैप रख
गुटके को फिर चूमकर
बाहर निकल पड़े।
इक्के पर बैठ
चलने को हुए उत्सुक।

ऊपर निगाह की तो
दूसरे विवाहवाली
तरुणी का चन्द्रमुख खिड़की में चमका ।
और,
उस चन्द्र ने
ज़रा-सा मुसकाकर जो
तीर एक मारा चितवन का अचूक-सा ।

*

घोर वज्रपात हुआ;
होश पर घात हुआ;
इक्के से तुरन्त
बेतहाशा गिरे भूमि पर;
कूल्हा गया सरक
कलेजा गया दरक
मँगाई गई डोली
और,
लादकर जल्द पहुँचाये गये अस्पताल ।
मुंशी मनबोधलाल ।

*

तब से पड़े हैं वहीं,
हो गये महीने भर,
किन्तु
वह चाहते नहीं हैं जल्द उठना ।
टाँग हिलती है कभी

लेते करवट हैं
तो,
आह कर आँखें मूँद
लेने लगते हैं रस
चोट की चिलक में
कटाक्ष की मिठास का।
खूब ही हुये हलाल।
मुंशी मनबोधलाल।

*

कहते हैं बारबार
अस्पताल-वासियों से
ऐसा मज़ा टीस का
न देव ने न बोधा ने
न रसिया विहारी
मतिराम पदमाकर ने
स्वप्न मे भी प्राप्त किया होगा एक दिन भी।
और,
वह बूढ़ा रतनाकर तो जन्म भर
लगन लगाये रहा,
किन्तु रस पाया नहीं,
खोज ही मे खो गया।

*

और,
कभी चोट में जो चिलक विशेष हुई

पड़े-पड़े गाँधीजी को
कोसते हैं बारबार
नारी को अहिंसा का पढ़ाया पाठ क्यों नहीं ?
और क्या करें मलाल !
मुंशी मनबोधलाल ।